जनवरी-जून, 2024

अंक 7, संख्या 1

रेशा किरण

प्राकृतिक रेशा पर आधारित अर्धवार्षिक राजभाषा पत्रिका

भाकृअनुप-केन्द्रीय पटसन एवं समवर्गीय रेशा अनुसंधान संस्थान

(आईएसओ 9001 : 2015 प्रमाणित संस्थान)

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद

बैरकपुर, कोलकाता - 700121

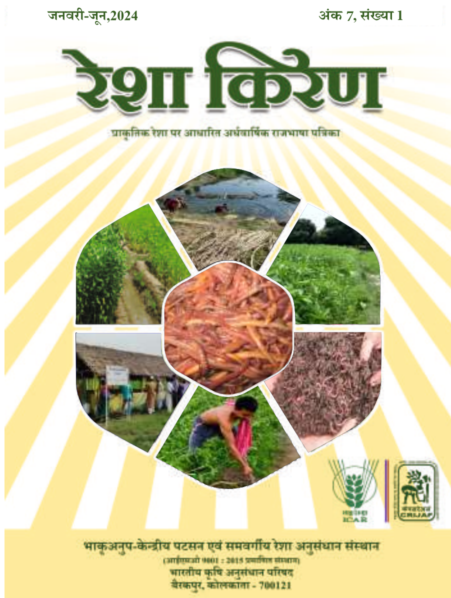
जनवरी-जून,2024
अंक 7, संख्या 1
रेशा किरण
प्राकृतिक रेशा पर आधारित अर्धवार्षिक राजभाषा पत्रिका
भाकृअनुप-केन्द्रीय पटसन एवं समवर्गीय रेशा अनुसंधान संस्थान
(आईएसओ 9001 : 2015 प्रमाणित संस्थान)
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद
बैरकपुर, कोलकाता - 700121

ICAR-CRIJAF

भाकृअनुप
ICAR

रेशा-किरण

अंक : 7 (1)

2024

केपसरेअसं
CRIJAF
ICAR-CENTRAL RESEARCH INSTITUTE FOR JUTE AND ALLIED FIBRES

भाकृअनुप - केन्द्रीय पटसन एवं समवर्गीय रेशा अनुसंधान संस्थान

बैरकपुर, कोलकाता-700121, पश्चिम बंगाल, भारत

संरक्षक एवं प्रकाशक

डॉ. गौरांग कर, निदेशक

भाकृअनुप - केन्द्रीय पटसन एवं समवर्गीय रेशा अनुसंधान संस्थान
बैरकपुर, कोलकाता-700121, पश्चिम बंगाल, भारत
दूरभाष: (033) 25356124, 25356125
फैक्स: (033) 2535 0415
ई मेल: director.crijaf@icar.gov.in

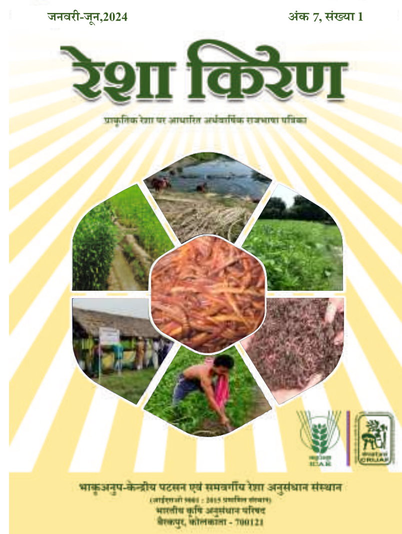

संपादक मंडल

डॉ. एस. के. पाण्डेय
डॉ. कुमार निशांत चौरसिया
डॉ. एस. के. झा
डॉ. शैलेश कुमार
डॉ. एस. सतपथी
डॉ. ए.के. सिंह
श्री विकास कुमार केशरी
श्री मनोज कुमार राय
डॉ. गौरांग कर

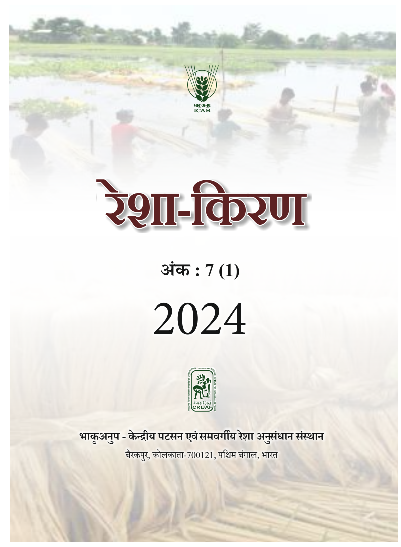

उचित उद्धरण

रेशा किरण 2024 अंक : 7 (1) भाकृअनुप-केन्द्रीय पटसन एवं समवर्गीय रेशा अनुसंधान संस्थान, बैरकपुर, कोलकाता-700121

पत्रिका में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार एवं दृष्टिकोण पूर्णतया संबंधित लेखक के हैं।
संस्थान अथवा राजभाषा कक्ष का इससे सहमत होना आवश्यक नहीं है।

© इस पत्रिका में प्रकाशित सामग्री प्रकाशक की अनुमति के बिना कहीं भी प्रस्तुत करना निषेध है।

निदेशक की कलम से

भारतवर्ष विविधताओं का देश है। यहाँ लोगों के रहन-सहन, खान-पान, वेश-भूषा इत्यादि में व्यापक विभिन्नता देखने को मिलती है। इसके बावजूद भी देश में अखण्ड एकता का भी दृष्टिगोचर होता है। देश के सभी लोग बड़े उल्लास के साथ एक-दूसरे की संस्कृति तथा भाषा को बड़ी सहजता के साथ अपना लेते हैं। ध्यान देने वाली बात यह है कि यह सहजता किस प्रकार से प्राप्त होती है; तो हम पाते है "हिन्दी"। मुझे यह कहने में कोई अतिसंयोक्ति नहीं होगी कि सब को एक साथ लेकर चलने में यदि कोई भाषा सक्षम है तो वह केवल हिन्दी ही है। अतः हिन्दी ही एक मात्र ऐसी भाषा है, जिसके माध्यम से हम एक-दूसरे से जुड़े हुए है। हिन्दी जन सामान्य की भाषा बनी रहे, इसके लिए सभी को इस दिशा में सार्थक प्रयास करते रहना आवश्यक है। इसी क्रम में देखा जाए तो पश्चिम बंगाल के उत्तर 24 परगना जिले के बैरकपुर में स्थित भाकृअनुप-केन्द्रीय पटसन एवं समवर्गीय रेशा अनुसंधान संस्थान, जो कि भाषायी वर्गीकरण के अनुसार "ग" क्षेत्र में आता है, फिर भी हिन्दी के विकास एवं प्रचार- प्रसार में महती भूमिका का निर्वहन कर रहा है। संस्थान को शायद ही कभी भी अपनी नयी प्रौद्योगिकियों के प्रसार तथा इस क्षेत्र में कृषि संबंधित समस्याओं को सुलझाने में कोई समस्या आई हो। संस्थान के वैज्ञानिकों ने पूरे समर्पण भाव से इस दिशा में अपना अतुलनीय योगदान प्रदान कर रहे है।

अनुसंधान के क्षेत्र में यह संस्थान अग्रणी भूमिका निभाने के साथ ही साथ हिन्दी के प्रचार-प्रसार में भी व्यापक योगदान दे रहा है। संस्थान में कार्यरत समस्त अधिकारियों एवं कर्मचारियों की हिन्दी के प्रति विशेष लगाव संस्थान द्वारा प्रकाशित होने वाली अर्ध-वार्षिक राजभाषा गृह पत्रिका "रेशा-किरण" के निरंतरता के माध्यम से स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है। "रेशा-किरण" आज अपने 7वें अंक के प्रथम संस्करण के प्रकाशन के सोपान पर है। इस अंक में आप संस्थान में हो रहे विभिन्न क्रिया कलापों को शोध आलेख तथा विविध लेखों के माध्यम से अनुभव कर सकते हैं। "रेशा-किरण" का सातवां अंक भाग-1 को प्रस्तुत करते हुए अत्यंत हर्ष की अनुभूति हो रही है। पत्रिका के इस अंक में पटसन एवं समवर्गीय रेशा फसलों के आधुनिक कृषि विधाओं पर विस्तार पूर्वक प्रकाश डाला गया है। आप इस पत्रिका में एक ओर वर्तमान परिदृश्य में पुनर्योजी कृषि की भूमिका एवं महत्व के विषय में जानकारी प्राप्त करेंगे, तो वहीं दूसरी ओर फसलों पर उच्च तापमान तनाव का प्रभाव तथा प्रबंधन रणनीति से अवगत होंगे। आप इस अंक में पटसन पैदावार और गुणवत्ता बढ़ाने में जल-निकास प्रबंधन के महत्व से भी परिचित होंगे। पत्रिका में कृषि यंत्रीकरण के व्यापक उपयोग में कृषि सेवा केन्द्र की भूमिका, जैविक उर्वरकों की आवश्यकता और उनके अनुप्रयोग इत्यादि पर विस्तृत चर्चा की गई है। इसके अतिरिक्त उक्त अंक में समय-समय पर संस्थान में कार्यान्वित राजभाषा संबंधित विभिन्न गतिविधियों पर भी व्यापक प्रकाश डाला गया है।

पत्रिका के इस अंक के प्रकाशन में संपादक मण्डल के सभी सदस्य तथा प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से जुड़े संस्थान के समस्त वैज्ञानिक, अधिकारी तथा कर्मचारीगण बधाई के पात्र हैं। इस पत्रिका के निरंतर प्रकाशन एवं प्रगति की कामना करता हूँ जोकि पटसन कृषि के वैज्ञानिक विधाओं के साथ-साथ राजभाषा के प्रचार-प्रसार के मार्ग को भी प्रसस्त करेगा।

गौरांग कर

दिनांक : 30.06.2024

(गौरांग कर)
निदेशक
भाकृअनुप - के.प.स.रे.अ.सं.

इस अंक में

क्र.सं.	तकनीकी लेख	पृष्ठ सं.
1	वर्तमान परिदृश्य में पुनर्योजी कृषि की भूमिका एवं महत्व सोनाली पाल मजुमदार, नंदिता सिन्हा, सौरव घोष, एन. एम. आलम, बी. मजूमदार, डी. दत्ता, एस. के. पाण्डेय, संजय साहा एवं गौरांग कर	9
2	फसलों पर उच्च तापमान तनाव का प्रभाव तथा प्रबंधन रणनीति सौरव घोष, देबारती दत्ता, ए. के. सिंह, एन. एम. आलम, एस. पी. मजूमदार, बिजन मजूमदार, रीतेश साहा एवं गौरांग कर	13
3	केंचुआ खाद (वर्मी-कम्पोस्ट) की आवश्यकताएं एवं तैयारी विधि दीपांकर घोराई, संदीपन गराई, शेख मोहम्मद अज़ीज़ुर रहमान, सुब्रत सत्पथी एवं गौरांग कर	17
4	पटसन खेती में भूमि जलभराव का प्रबंधन देबारती दत्ता, ए.के. सिंह, सौरव घोष, धनंजय बर्मन,एन.एम. आलम, आर.के. नायक एवं गौरांग कर	26
5	कृषि यंत्रीकरण के व्यापक उपयोग में कृषि सेवा केन्द्र की भूमिका शैलेश कुमार, माणिक लाल राय, षम्रा ए. एवं सुनीति कुमार झा	32
6	ग्रामीण आजीविका में सुधार एवं सुरक्षा हेतु पटसन की उन्नत कृषि प्रवीण कुमार एवं कुणाल प्रताप सिंह	36
7	जैविक (सूक्ष्म-जीवाणु) उर्वरकों की आवश्यकता एवं उनका अनुप्रयोग दीपांकर घोराई, सुब्रत सरकार, शेख मोहम्मद अज़ीज़ुर रहमान, सुब्रत सत्पथी एवं गौरांग कर	41
8	पटसन उत्पादकता एवं गुणवत्ता वृद्धि में जल -निकास प्रबंधन का महत्व रंजन कुमार नायक, गौरांग कर, सुनीति कुमार झा, षाम्रा ए. एवं संजय साहा	46
9	संस्थान में राजभाषा गतिविधियाँ : एक झलक मनोज कुमार राय, विकास कुमार केशरी एवं कुमार निशांत चौरसिया	49

वर्तमान परिदृश्य में पुनर्योजी कृषि की भूमिका एवं महत्व

सोनाली पाल मजुमदार, नंदिता सिन्हा, सौरव घोष, एन. एम. आलम, बी. मजूमदार, डी. दत्ता, एस. के. पाण्डेय, संजय साहा एवं गौरांग कर

भाकृअनुप – केन्द्रीय पटसन एवं समवर्गीय रेशा अनुसंधान संस्थान, बैरकपुर, कोलकाता -700121

परिचय

पुनर्योजी कृषि (रिजेनेरेटिव अग्रीकल्चर) खेती का एक दृष्टिकोण है जो पुनर्स्थापन एवं कृषि भूमि की पारिस्थितिकी तंत्र सेवाओं को बढ़ाने पर जोर देती है, जिसका लक्ष्य न केवल पर्यावरण की स्थिरता बल्कि सामाजिक और आर्थिक परिणामों में भी सुधार लाना है। रॉबर्ट रोडेल द्वारा शुरू की गई (1983) रिजेनेरेटिव अग्रीकल्चर में मिट्टी की उत्पादकता और जैविक स्वास्थ्य दोनों को बढ़ाने के साथ ही प्राथमिक रूप से मृदा संरक्षण को व्यापक पारिस्थितिक लाभों का प्रवेश द्वार बताया गया है । इसमें कार्बन पृथक्करण शामिल है, जो जलवायु परिवर्तन एवं जैव विविधता के नुकसान से निपटने में मदद करता है। पुनर्योजी कृषि, सिंथेटिक इनपुट पर निर्भरता कम करती है तथा कम जुताई और स्थानीय समुदाय की भागीदारी को कृषि पद्धतियों में बढ़ाती है।

पुनर्योजी कृषि (आर.ए.) के मौलिक सिद्धांत

1. **न्यूनतम आदान एवं न्यूनतम कर्षण :** पुनर्योजी कृषि बाहरी संसाधनों पर निर्भरता को कम करता है, जैसे – संशलेशित उर्वरक, कीटनाशक और न्यूनतम मिट्टी की जुताई को बढ़ावा देकर मृदा की स्वास्थ्य और संरचना को बनाए रखना है।

2. **मृदा आवरण :** आवरण फसलें मिट्टी को कटाव (erosion) से बचाती है, जल संरक्षण एवं मृदा के तापमान को नियंत्रित रखने एवं जीवंत मिट्टी पारिस्थितिकी तंत्र को संतुलित करती है, जो कि दोनों, फसल वृद्धि एवं चारागाह के लिए फायदे मंद है।

3. **जैव विविधता :** फसल चक्रण, कृषि वानिकी और सिल्वोपास्चर जैसी प्रथाएं ऑनसाइट / खेत में ही जैव विविधता को बढ़ाने, लचीलेपन में सुधार और पारिस्थितिक संतुलन को बनाए रखती है।

4. **पशुधन को एकीकृत करना :** पशुधन के अपशिष्ट उत्पादों से पोषक तत्वों का आवर्तन तथा मिट्टी के कार्बनिक पदार्थ में सुधार लाने में पुनर्योजी कृषि के अंतर्गत पशुधन एक

बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

5. **बारहमासी फसलें :** बारहमासी फसलें साल भर मिट्टी में जीवित जड़ों को बनाए रखकर कार्बन पृथक्करण और मिट्टी की संरचना को स्थिर रखने में मदद करती है।

पुनर्योजी कृषि की कुछ मुख्य क्रियाएँ

1. **जीरो टिलेज :** अनुसंधान ने दर्शाया है कि जीरो टिलेज प्रथाओं से पैदावार में उल्लेखनीय वृद्धि हो सकती है, जैसे कि जीरो-टिलेज अनुप्रयोग के तीन वर्षों के बाद गेहूँ की खेती से उपज में 9.7% की वृद्धि देखी गई है।

2. **फसल चक्रण और विविधीकरण :** विभिन्न प्रकार के फसलों के साथ नाइट्रोजन स्थिर करने वाली दलहन फसलों को शामिल करने से मिट्टी की उर्वरता बढ़ती है और कीट चक्र बाधित होती है, जिससे मिट्टी में जैविक कार्बन का स्तर एवं समग्र कृषि लचीलेपन में वृद्धि होती है।

3. **आवरण फसलें एवं अवशेषों को बनाए रखना:** आवरण फसल एवं अवशेषों को खेती में उपयोग करने से मिट्टी समृद्ध होती है, कुशलतापूर्वक पानी का प्रबंधन और मिट्टी के जैविक स्वास्थ्य में सुधार होती है, जिससे कार्बन भण्डारण और पोषक तत्वों की उपलब्धता में वृद्धि होती है।

4. **जैविक पोषक तत्व प्रबंधन और बायोचार :** सिंथेटिक इनपुट के स्थान पर जैविक आदानों को प्राथमिकता देना और बायोचार का उपयोग करने से ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन में काफी कमी आती है और मिट्टी के भौतिक और रासायनिक गुणों में भी साकारात्मक वृद्धि होती है।

5. **कृषि वानिकी और सिल्वोपासचर :** ये प्रणालियाँ कृषि और वानिकी प्रौद्योगिकियों को जोड़ कर कार्बन पृथक्करण और सिस्टम उत्पादकता दोनों के लाभों को अनुकूलित करती है।

6. **पशुधन एकीकरण :** घूर्णी चराई और अन्य पशुधन समावेशी रणनीतियों के उपयोग से मिट्टी की स्वास्थ्य और आर्थिक विविधता बढ़ती है और संभावित रूप से मिट्टी के जैविक कार्बन स्टॉक में वृद्धि लाती है।

पुनर्योजी कृषि के लाभ

1. **मृदा कार्बनिक पदार्थ और पोषक तत्व चक्रण में सुधार:** पुनर्योजी कृषि मिट्टी के जैविक पदार्थ को बढ़ाकर मिट्टी के स्वास्थ्य को महत्वपूर्ण रूप से बढ़ाती है, जिसके परिणामस्वरूप मिट्टी की संरचना, जल धारण क्षमता, पोषक तत्वों की उपलब्धता, वातन और माइक्रोबियल गतिविधि में

सुधार होता है। नो-टिल आवरण (कवर क्रॉपिंग) और फसल चक्रण जैसी विभिन्न प्रथाएं मिट्टी में जैविक कार्बन बढ़ाने में सहायक है, इस प्रकार कार्बन पृथक्करण को बढ़ावा मिलता है और सिंथेटिक उर्वरकों पर निर्भरता कम होती है। अध्ययनों से पता चलता है कि हरी खाद और फसल अवशेष के उपयोग विविध पुनर्योजी कृषि प्रथाओं में मिट्टी के नाइट्रोजन स्तर और समग्र रासायनिक गुणवता में काफी सुधार लाती है, जिससे मिट्टी के पारिस्थितिकी तंत्र के भीतर कार्बन भण्डारण और पोषक चक्र में वृद्धि होती है।

विभिन्न कृषि परिदृश्यों में नमी बनाए रखने में महत्वपूर्ण हो जाती है।

3. **उन्नत भौतिक मृदा स्वास्थ्य :** पुनर्योजी प्रथाओं के माध्यम से मिट्टी के भौतिक स्वास्थ्य में काफी सुधार हुआ है। कम जुताई और मिट्टी के आवरण को बनाए रखने जैसे तरीके मिट्टी को कटाव से बचाते हैं, पानी के इनफीलट्रेसन में सुधार और अपचय को कम करते हैं। इस तरह की प्रथाओं से मिट्टी की संरचना बेहतर होती है, स्थूल घनत्व कम होती है और

2. **मृदा नमी / जल धारण में सुधार :** मिट्टी की जल धारण क्षमता को बढ़ाने के लिए मिट्टी में जैविक कार्बनिक पदार्थ महत्वपूर्ण है। मृदा के जैविक कार्बनिक पदार्थ का बढ़ा हुआ स्तर रेतीली मिट्टी में विशेष रूप से फायदेमंद होता है, जहाँ वे नमी की मात्रा को बढ़ाते है, जिससे मिट्टी की जल धारण क्षमता में सुधार होता है। मिट्टी के गुणों में यह समायोजन विभिन्न प्रकार की मिट्टी और जलवायु परिस्थितियों से उत्पन्न चुनौतियों को कम करने में मदद करता है, जिससे पुनर्योजी कृषि प्रथाएं

संरंध्रता बढ़ती है, जो मजबूत फसल वृद्धि और पर्यावरणीय तनावों के प्रति बेहतर लचीलेपन के लिए आवश्यक है।

4. **मृदा जैविक स्वास्थ्य और माइक्रोबियल गतिविधि में वृद्धि :** रिजेनेरेटिव एग्रीकल्चर विविध सूक्ष्म-जैव पारिस्थितिकी तंत्र को बढ़ाने पर जोर देता है। जैविक संशोधनों और आवरण फसलों के उपयोग से माइक्रोबियल विविधता को बढ़ावा मिलता है, जो पोषक तत्वों की जैव उपलब्धता, मिट्टी की उर्वरता और समग्र पारिस्थितिकी तंत्र स्थिरता के

लिए आवश्यक है। ये प्रथाएं माइक्रोबियल बायोमास एवं उनकी गतिविधियों को बढ़ाती है, जिससे टिकाऊ कृषि के साथ-साथ मृदा गतिशीलता एवं उत्पादकता में साकारात्मक वृद्धि होती है।

5. **कीट, रोगजनक तथा खरपतवार की गतिशीलता :** पुनर्योजी कृषि प्रथाएं पारिस्थितिक संतुलन को बढ़ावा देने और रासायनिक हस्तक्षेप की आवश्यकता को कम करके कीटों, रोगजनकों और खरपतवारों को अधिक प्रभावी ढ़ंग से प्रबंधित करने में मदद करती हैं। इन्टर क्रॉपिंग, कवर क्रॉपिंग और जैविक संशोधन जैसी तकनीकें लाभकारी जीवाणुओं की उपस्थिति को बढ़ाती हैं, जो प्राकृतिक रूप से कीटों और बीमारियों से लड़ते हैं। इसके अलावा, ये प्रथाएं प्राकृतिक दमनकारी तत्वों और बेहतर फसल प्रतिस्पर्धा के माध्यम से खरपतवार की गतिशीलता को प्रबंधित करने में मदद करती है।

6. **जलवायु, अनुकूलन और शमन :** पुनर्योजी कृषि का जलवायु और शमन पर गहरा प्रभाव है, जीरो टिलेज और आवरण फसलों के उपयोग जैसी प्रथाएं मिट्टी में अधिक कार्बन जमा करके और रासायनिक उर्वरकों के इनपुट को कम करके ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन को काफी कम कर देती है। इसके अलावा, ये विधियाँ मिट्टी के एकत्रीकरण को बढ़ाती है और संघनन को कम करती है, कार्बन डाइ-ऑक्साइड उत्सर्जन को काफी कम करती है और जलवायु परिवर्तन के प्रति मिट्टी की रेसेलियंस को बढ़ाती है।

7. **भोजन और पोषण गुणवता :** पुनर्योजी कृषि मिट्टी के स्वास्थ्य को बढ़ाकर भोजन की पोषण गुणवता में सुधार करती है, जो बदले में स्वस्थ पौधों और जानवरों के जीवन का संवर्धन करती है। अध्ययनों से पता चला है कि पुनर्योजी रूप से प्रबंधित खेतों में उगाई गई फसलों और पशुओं में आवश्यक पोषक तत्वों और खनीजों का उच्च स्तर होता है, जो बेहतर समग्र भोजन गुणवत्ता में योगदान देता है और स्वास्थ्य को बेहतर बनाता है।

8. **उपज और आर्थिक स्थिरता :** चुनौतियों के बावजूद पुनर्योजी कृषि मिट्टी के स्वास्थ्य में सुधार और पर्यावरणीय तनाव के प्रति कम संवेदनशीलता के कारण समय के साथ फसल की उपज स्थिरता को बढ़ाती है। रिजेनेरेटिव एग्रीकल्चर अपनाने से आर्थिक स्थिरता भी संभव है, क्योंकि यह आदान लागत को कम करती है और पुनर्योजी रूप से उगाए गए उत्पादों के लिए प्रीमियम मूल्य निर्धारण कर सकती है, जो किसानों के लिए अधिक टिकाऊ आर्थिक मॉडल पेश करता है।

पुनर्योजी कृषि की सीमाएं : आशाजनक होते हुए भी पुनर्योजी कृषि को उपयोग में लाने के लिए विशेष ज्ञान की आवश्यकता, उच्च प्रारम्भिक लागत और सब्सिडी के बिना संभावित कम लाभ मार्जिन सहित कई चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। रिजेनेरेटिव एग्रीकल्चर में परिवर्तन के लिए इसके व्यापक अपनाने को सुनिश्चित करने के लिए महत्वपूर्ण बाजार और बुनियादी ढ़ाँचे की बाधाओं पर काबू पाने की आवश्यकता है।

निष्कर्ष

पुनर्योजी कृषि खेती के लिए एक समग्र दृष्टिकोण का प्रतिनिधित्व करती है, जो न केवल मिट्टी के स्वास्थ्य और पारिस्थितिकी तंत्र संतुलन को बढ़ाती है, बल्कि जलवायु परिवर्तन, खाद्य की गुणवत्ता और आर्थिक व्यवहार्यता के संदर्भ में भी पर्याप्त लाभ प्रदान करती है। हाँलाकि व्यापक रूप से अपनाने के लिए वैश्विक स्तर पर कृषि प्रणालियों को बदलने में इसकी क्षमता को पूरी तरह से साकार करने के लिए व्यावहारिक और प्रणालीगत दोनों चुनौतियों का समाधान करने की आवश्यकता है।

फसलों पर उच्च तापमान तनाव का प्रभाव तथा प्रबंधन रणनीति

सौरव घोष, देबारती दत्ता, ए. के. सिंह, एन. एम. आलम, एस. पी. मजूमदार, बिजन मजूमदार, रीतेश साहा एवं गौरांग कर

भाकृअनुप – केन्द्रीय पटसन एवं समवर्गीय रेशा अनुसंधान संस्थान, बैरकपुर, कोलकाता -700121

जलवायु परिवर्तन विगत कई दशकों से वैश्विक चिंता का विषय बना हुआ है। वर्तमान समय में यह एक विकराल रूप धारण कर चुका है। यह स्थिति मौसम और जलवायु घटनाओं में परिवर्तन के कारण हमारे समक्ष व्यापक रूप से उभर कर सामने आया है। यह परिवर्तन किसानों के साथ-साथ आम जनता के लिए भी बड़ी चिंता का विषय है। इस विषय पर गठित अंतर-सरकारी जलवायु परिवर्तन पैनल ने बताया है कि पूर्व-औद्योगिक युग से वैश्विक औसत तापमान 1.1° C बढ़ गया है। तापमान में इस वृद्धि का मुख्य कारक मानव गतिविधियों को बताया जा रहा है, जिसमें जीवाश्म ईंधन को जलाना और वनों की कटाई शामिल है। भारत में, जलवायु परिवर्तन के पीछे तापमान में परिवर्तन, वर्षा की आवृत्ति, समय और मात्रा में बदलाव इत्यादि कारकों को महसूस किया जा रहा है। हाल के वर्षों में, भारत ने सूखा, बाढ़ तथा लू जैसी चरम मौसमी घटनाओं के कई उदाहरण देखे हैं। इन घटनाओं का कृषि उत्पादकता पर गंभीर प्रभाव पड़ा है। कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय की एक रिपोर्ट के अनुसार, मौसमी घटनाओं के कारण फसलों का नुकसान पिछले दशक में 90,000 करोड़ रुपये (12 बिलियन अमरीकी डालर) से अधिक का हुआ है। यह देश भर के किसान के जीवन पर एक नकारात्मक प्रभाव डालता है।

वैश्विक कृषि उत्पादकता के लिए ग्रीन हाउस गैस (GHG) उत्सर्जन के कारण ग्लोबल वार्मिंग को एक भयानक खतरे के रूप में देखा जा रहा है। पाँचवे मूल्यांकन रिपोर्ट (AR 5) में बताया गया है कि अंतर-सरकारी पैनल द्वारा जलवायु परिवर्तन (आईपीसीसी, 2018) के अनुसार सभी क्षेत्रों में वैश्विक तापमान में 2.0 – 3.5 °C तक की वृद्धि होगी। धरती का औसत तापमान 1970 के दशक के बाद लगातार बढ़ता जा रहा है। हालांकि, वर्ष 2021 में वैश्विक जलवायु के इतिहास में कई प्रकार से ऐतिहासिक रिकॉर्ड तोड़ दिया है। भारत में, 2022 के मार्च और अप्रैल महीने, देश के अधिकांश क्षेत्रों में अधिकतम और न्यूनतम तापमान में असामान्य वृद्धि देखी गई और वर्षा में 60 से 66% तक की कमी पाई गयी।

उच्च तापमान तनाव

उच्च तापमान तनाव एक प्रमुख पर्यावरणीय कारक है, जिसमें पर्याप्त समय के लिए तापमान में वृद्धि हो जाती है, जिससे पौधे के आतंरिक प्रक्रिया या विकास को बहुत अधिक क्षति होता है। मृदा नमी के स्तर में गिरावट के कारण गर्मी की स्थिति बढ़ जाती है, जिसके परिणाम स्वरूप मिट्टी का तापमान बढ़ जाता है, जिसका प्रभाव मिट्टी के सूक्ष्म जीवाणु पर भी पड़ता है। उच्च तापमान के प्रभाव से पौधों की वृद्धि और विकासात्मक प्रक्रियाएं काफी हद तक प्रभावित होती हैं, जिससे उपज में बेहद कमी देखने को मिलता है। फसलों का विकास उपयुक्त तापमान पर निर्भर करती है। तापमान के स्तर में वृद्धि मुख्य रूप से पौधों की शारीरिक प्रक्रियाओं, विशेष रूप से प्रकाश संश्लेषण, वाष्पोत्सर्जन, श्वसन और अन्ततः उपज को सीमित करती है। उच्च तापमान के कारण खाद्य फसलों के उत्पादन में गिरावट होता है, जो कृषि उत्पादकता के लिए एक प्रमुख चिंता का विषय है।

फसलों पर उच्च तापमान का प्रभाव

- उच्च तापमान फसल की उत्पादन क्षमता को सीमित करता है और पौधों में विभिन्न विकास चरणों पर प्रभाव डालता है।
- उच्च तापमान के रूपात्मक लक्षणों में पत्तियों एवं टहनियों, शाखाओं तथा तनों का झुलसना और सनबर्न, पत्ती जीर्णता तथा जड़ वृद्धि अवरोध, फलों का रंग परिवर्तन शामिल है, जो अंततः उत्पादन में कमी का कारण बनता है। उच्च तापमान के संचार से पौधे की ऊँचाई, कुल जीवन वृत्त और टिलर्स की संख्या कम हो जाती है।
- उच्च तापमान के कारण कम अंकुरण, असामान्य अंकुरण तथा रैडिकल एवं प्लूमुल वृद्धि में कमी स्पष्ट तौर पर देखी जाती है। उच्च तापमान बीजों की अंकुरण क्षमता को कम कर देती है, जिसके परिणाम स्वरूप खराब अंकुरण होता है।

- धान, गेहूँ और मक्का जैसी फ़सलों में पुष्पन और प्रजनन अवस्थाओं के दौरान उच्च तापमान के कारण दानों का भराव कम हो जाता है और अनाज की उपज में कमी आ जाती है। धान में 35°C से ऊपर तापमान क्षति का कारण बन सकते हैं। उच्च तापमान तनाव से धान में स्पाइक्स की संख्या और प्रति पौध फ्लोरेट्स की संख्या भी कम हो जाती है।
- गेहूँ की वानस्पतिक अवस्था के दौरान उच्च तापमान (35°C) के संपर्क में आने से पौधे की ऊँचाई, बायोमास संचय और पत्ती क्षेत्र सूचकांक में कमी आ सकती है। भारत में गंगा के मैदानी भागों में गेहूँ की देरी से बुआई करने से दाना भरने की अवस्था के दौरान टर्मिनल हीट स्ट्रेस होने की संभावना बढ़ जाती है, जिससे अनाज की उपज में काफी कमी आती है। 30 नवंबर के बाद गेहूँ की बुवाई में प्रतिदिन देरी से अनाज की उपज में 36 कि.ग्रा./हेक्टेयर/दिन की दर से कमी आती है। सामान्य तौर पर, देर से बुवाई होने वाली गेहूँ की किस्में गंभीर तापमान तनाव का सामना करती हैं, शीर्ष तथा परिपक्वता अवधि को छोटा करती हैं और अंततः अंतिम उपज और अनाज की गुणवत्ता को प्रभावित करती हैं।
- उच्च तापमान प्रजनन विकास की दर को बढ़ा सकता है, जो फल या बीज उत्पादन में योगदान करने के लिए प्रकाश संश्लेषण के समय को कम करता है।
- दलहनी फसलों में अरहर तापमान के अचानक उतार-चढ़ाव के प्रति अत्यन्त संवेदनशील होता है, जिससे बड़े पैमाने पर फूल गिरते हैं। मटर में फूल आने के दौरान उच्च तापमान के संपर्क में आने से फूल झड़ना, फली गिरना और दाना भरने में कमी के कारण भारी नुकसान होता है।
- गर्मी के तनाव के तहत गन्ने में शुरुआती पत्ते जीर्णता के साथ-साथ इंटरनोडल लंबाई और बायोमास संचय में महत्वपूर्ण कमी दर्ज की गई है। पटसन (जूट) भारतीय उप महाद्वीप में उगाई जाने वाली एक प्रमुख रेशा फसल है, जिसका उपयोग मुख्यतः टेक्सटाइल उद्योग में धागों तथा बोरियों के निर्माण में किया जाता है। हालांकि, जलवायु परिवर्तन और बढ़ते तापमान के कारण पटसन की खेती पर गहरा प्रभाव पड़ रहा है। उच्च तापमान से पटसन के पौधों में हीट स्ट्रेस की स्थिति उत्पन्न होती है, जिससे उनकी वृद्धि और विकास में बाधा आती है। गर्मी के स्ट्रेस का प्रभाव पटसन के तनों की मोटाई, लंबाई तथा रेशा की गुणवत्ता पर पड़ता है। तापमान में वृद्धि फोटोसिंथेसिस की दर को कम कर देती है, जिससे पौधे का समग्र उत्पादन कम हो जाता है। इसके अतिरिक्त, उच्च तापमान पौधे के पोषक तत्वों के अवशोषण तथा पानी के उपयोग की क्षमता को प्रभावित करता है, जिससे फसल की गुणवत्ता और उपज में कमी आती है।

उच्च तापमान का फसलों के जैविक प्रक्रियाओं पर प्रभाव

पौधों की वृद्धि और विकास में कई जैव रासायनिक प्रक्रियाएँ शामिल होती है जो तापमान के प्रति संवेदनशील होती है। जैसे-जैसे तापमान बढ़ता है, वाष्पोत्सर्जन की दर बढ़ती है, जिससे पौधों में पानी की कमी हो जाती है। यह पोषक तत्वों को ग्रहण करने की क्षमता को प्रभावित करता है, जिससे पौध वृद्धि और उपज कम हो जाती है। इसके अतिरिक्त, उच्च तापमान पौधे की सेलुलर संरचना को नुकसान पहुँचा सकता है, जिससे प्रकाश संश्लेषण कम हो जाता है और अंततः उपज कम हो जाती है। उच्च तापमान कुछ आवश्यक फाइटो हार्मोन जैसे एब्सिसिक एसिड, इथिलीन और सेलिसिलिक एसिड को बढ़ाता है और गिबरेलिक एसिड, साइटोकिनिन और औक्सिन जैसे फाइटो हार्मोन कम करता है; इससे रिएक्टिव ऑक्सीजन स्पीशीज के निर्माण का उत्पादन भी होता है। उच्च तापमान सहित विभिन्न पर्यावरणीय तनाव स्थितियों के तहत पौधे लगातार जीवित रहने के लिए संघर्ष करते हैं। एक पौधा, कुछ हद तक, पौधे के शरीर के भीतर भौतिक परिवर्तनों द्वारा और अक्सर बदलते उपापचय (मेटाबोलिज्म) के संकेत बनाकर गर्मी के तनाव को सहन करने में सक्षम होता है। फसलों में उच्च तापमान तनाव का प्रभावउच्च तापमान के लिए पौधों की प्राथमिक शारीरिक प्रतिक्रियाओं में से एक रंध्र का बंद होना है। रंध्र (स्टोमेटा) पत्तियों की सतह पर छोटे छिद्र होते हैं, जिससे कार्बनडाइ ऑक्साइड और ऑक्सीजन सहित कई गैसों का आदान-प्रदान होता है। जब तापमान बढ़ता है, तो पौधे पानी के नुकसान को कम करने के लिए अपने रंध्रों को बंद कर देते हैं, जिससे प्रकाश संश्लेषण के लिए कार्बन डाइ ऑक्साइड की खपत कम हो जाती है और उपज में कमी आ

सकती है। उच्च तापमान भी पौधे के ऊतकों की संरचना में बदलाव ला सकता है। उदाहरण के लिए, बढ़े हुए तापमान से पौधों में शर्करा की सांद्रता में वृद्धि हो सकती है, जिससे फसलों की गुणवत्ता में कमी आ सकती है। इसके अतिरिक्त, उच्च तापमान से पौधों में जहरीले यौगिकों का संचयन हो सकता है, जिससे वृद्धि और उपज कम हो सकती है।

उच्च तापमान का प्रबंधन

- **पूरक सिंचाई :** समय पर पर्याप्त सिंचाई फसलों पर गर्मी के तनाव के प्रभाव को कम करने में मददगार होती है। मिट्टी में पर्याप्त नमी स्तर बनाए रखना उच्च तापमान के प्रतिकूल प्रभावों को कम करने में सक्षम होते हैं।
- **मल्चिंग :** मिट्टी में जैविक या प्लास्टिक मल्च के प्रयोग से मिट्टी की नमी को संरक्षित करने और मिट्टी की सतह के तापमान को कम करने में मदद मिलती है, जिससे फसलों पर गर्मी के तनाव के प्रभाव को कम किया जा सकता है। देश में किए गए अध्ययनों से पता चला है कि मल्चिंग से विभिन्न फसलों की उपज और जल के उपयोग की दक्षता में वृद्धि होती है।
- **उन्नत कृषि पद्धतियाँ :** फूलों और अनाज भरने जैसे महत्वपूर्ण फसल विकास चरणों के दौरान गर्मी के तनाव से बचावके लिए बुवाई के समय का समायोजन एक प्रभावी तरीका है। फसल अवशेषों की अवधारण के साथ शून्य जुताई और कम जुताई मिट्टी में उच्च जल प्रतिधारण क्षमता को बढ़ाता है । इसी तरह फसलों पर मिट्टी के तापमान का दबाव कम हो जाता है। मिट्टी में गोबर खाद, बायोचार आदि जैसे कार्बनिक संशोधन का प्रयोग जल

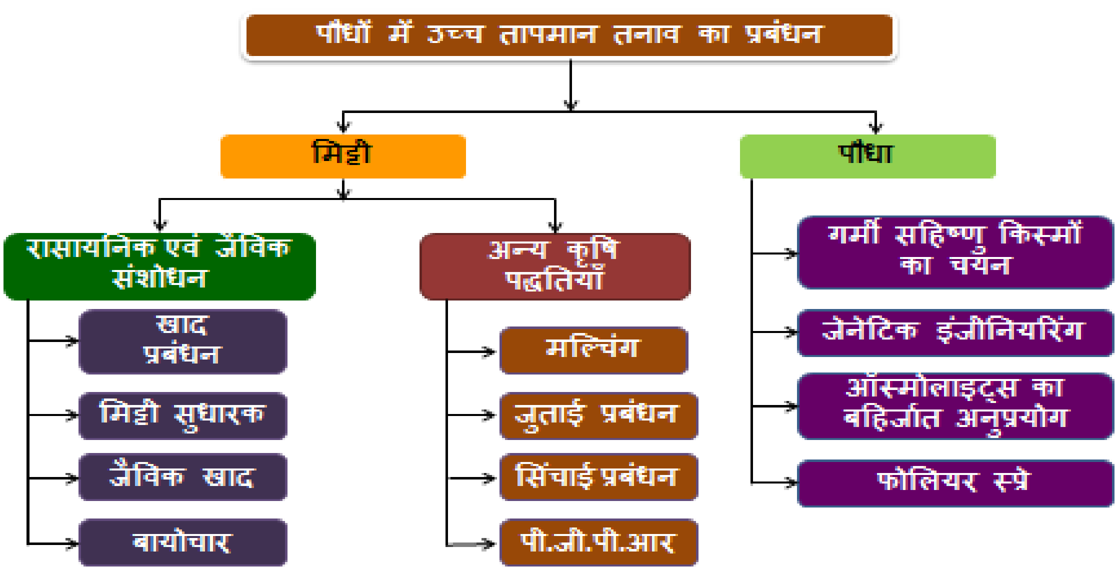

धारण क्षमता को बढ़ाने और गर्मी के तनाव को कम करने में कारगर हैं।

- **रासायनिक उपचार :** पौधों के विकास नियामकों (रेगुलेटर्स) और ऑस्मोप्रोटेक्टेंट्स के पर्णीय प्रयोग से फसलों पर गर्मी के तनाव के प्रभाव को कम करने में मदद मिलती है। अध्ययनों से पता चला है कि सैलिसिलिक एसिड का पर्णीय प्रयोग धान और गेहूँ में वृद्धि और उपज में सुधार करता है जबकि प्रोलीन के पर्णीय प्रयोग से चना और टमाटर में वृद्धि और उपज में सुधार होता है। गर्मी के दबाव में सोयाबीन में एस्कॉर्बिक एसिड जैसे बहिर्जात एंटी ऑक्सीडेंट के प्रयोग से वृद्धि और उपज में सुधार हुआ है।
- **फसल प्रजनन तकनीकें :** पारंपरिक प्रजनन तकनीक और जेनेटिक इंजीनियरिंग के माध्यम से गर्मी-सहिष्णु फसल किस्मों का विकास करना गर्मी के तनाव के नकारात्मक प्रभावों को कम करने के सबसे प्रभावी तरीकों में से एक है।

निष्कर्ष

दुनिया भर में खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए कृषि विदों, निर्णय कर्ताओं और फसल उत्पादकों के लिए जलवायु परिवर्तन विशेष रूप से उच्च तापमान का ज्ञान आवश्यक है। ग्लोबल वार्मिंग के परिणाम स्वरूप फसलों पर उच्च तापमान का व्यापक नकारात्मक प्रभाव पड़ने की उम्मीद है। इस बीच, वैश्विक जनसंख्या तेजी से बढ़ रही है और वर्ष 2100 में इसके 11 अरब होने का अनुमान है। बढ़ती आबादी को आहार आपूर्ति के लिए वैश्विक खाद्य उत्पादन में 70% की वृद्धि एक चुनौतीपूर्ण कार्य है। बढ़ती वैश्विक खाद्य मांग को पूरा करने और खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए खाद्य फसल की पैदावार को बनाये रखना महत्वपूर्ण कृषि लक्ष्य है। ग्लोबल वार्मिंग के कारण हर साल उच्च तापमान में वृद्धि और ग्रीन हाउस गैसों में वृद्धि से तापमान में वृद्धि होती है। देश के कई हिस्सों में उच्च ग्रीष्मकाल और सूखे ने कृषि पर बहुत ही गम्भीर असर डाला है। वैश्विक खाद्य उत्पादन तेज गति से बढ़ रहा है, लेकिन प्रमुख अनाज फसलों के लिए यह गति धीमी है। तापमान में वृद्धि फसल की बढ़वार एवं उपज को प्रभावित करती है। इसलिए इसका प्रबंधन जरूरी है। उन्नत कृषि पद्धतियों के साथ-साथ गर्मी-सहिष्णु फसलों या ट्रांसजेनिक खाद्य फसलों को विकसित करना एक श्रेष्ठ विकल्प है, जो भावी पीढ़ियों को खाद्यान्न सुरक्षा व पोषण प्रदान करेगी।

केंचुआ खाद (वर्मी-कम्पोस्ट) की आवश्यकताएं एवं तैयारी विधि

दीपांकर घोराई, संदीपन गराई, शेख मोहम्मद अज़ीज़ुर रहमान, सुब्रत सत्पथी एवं गौरांग कर

भाकृअनुप – केन्द्रीय पटसन एवं समवर्गीय रेशा अनुसंधान संस्थान, बैरकपुर, कोलकाता -700121

प्राचीन काल से ही केंचुएं को किसानों का सबसे अच्छा मित्र कहा जाता रहा है। वैज्ञानिकों ने विभिन्न प्रयोगों द्वारा इसके विस्तृत तथ्य उजागर किये हैं। विभिन्न जैविक पदार्थ धीरे-धीरे मिट्टी के संपर्क में आने से या उसके बिना भी जैविक उर्वरकों में परिवर्तित हो जाते हैं। बैक्टीरिया, फफूंद या केंचुआ की विभिन्न प्रजातियाँ परिवर्तन के दौरान उत्प्रेरक के रूप में कार्य करती हैं। जब इन जैविक पदार्थों को केंचुएं की विभिन्न प्रजातियों द्वारा थोड़ा ऑक्सीकृत किया जाता है या सीधे खाया जाता है और केंचुएं की आहार नलिका के माध्यम से निष्कासित किया जाता है, तो उन्हें अपशिष्ट कहा जाता है। ये वास्तव में केंचुआ खाद हैं। इसे विशेष रूप से किसी भी पौधे के लिए संतुलित उर्वरक के रूप में परीक्षण किया जाता है, जो अन्य जैविक उर्वरक की तुलना में इसकी गुणवत्ता बेहतर है। अतः कृषि में केंचुआ खाद की कोई तुलना नहीं है। प्रसिद्ध प्रकृति वादी चार्ल्स डार्विन ने केंचुएं के कार्य को देखकर कहा था - "केंचुआ मिट्टी को प्राकृतिक रूप से जोतता है।" केंचुएं की सहायता से जैविक पदार्थों को कम समय में विघटित करके एरोबिक स्थितियों में उच्च गुणवत्ता वाली खाद का उत्पादन किया जाता है, जिसे केंचुआ खाद कहा जाता है। केंचुआ खाद विभिन्न सामग्रियों का मिश्रण है, जैसे खाद, केंचुएं, केंचुए के अंडे, अन्य जीवाणु और कीट। केंचुए पौधों का मुख्य भोजन और पोषक तत्व हैं और इसमें उत्तेजक (फॉस्फेटस, यूरेस, लाइपेज, एमाइलेज आदि), हार्मोन, ह्यूमिक एसिड, विटामिन, एंटीबायोटिक्स होते हैं।

दुनिया भर में केंचुएं की लगभग 7500 प्रजातियाँ हैं। इन में से लगभग सभी प्रजातियाँ कुछ हद तक केंचुआ खाद के उत्पादन में मदद कर सकती हैं, लेकिन उनकी मात्रात्मक क्षमता में काफी भिन्नता होती है। केंचुएं की सभी प्रजातियाँ मिट्टी की सतह के नीचे अलग-अलग गहराई पर रहती हैं। लेकिन ये सभी खाद बनाने में समान रूप से सहायक नहीं हैं। जो केंचुआ मिट्टी की सतह के 5-7 फीट के भीतर रहते हैं उन्हें एपिज़ोइक केंचुए कहा जाता है। वे सीधे जैविक सामग्री को भोजन के रूप

में उपयोग करते हैं और इसे अपशिष्ट पदार्थ के रूप में त्याग देते हैं जो हमारे लिए उपयोगी है।

आज, प्रौद्योगिकी को पूरे विश्व में "पर्यावरण की दृष्टि से टिकाऊ", "आर्थिक रूप से व्यवहार्य" और "सामाजिक रूप से स्वीकार्य" होना जरुरी है। केंचुआ खाद बनाने की इस तकनीक का उपयोग अब पांच विशेष क्षेत्रों में किया जाता है।

(1) वर्मी खाद प्रौद्योगिकी (विशेष रूप से जैविक कचरे का उपयोग करना)

(2) वर्मी पटसनन प्रौद्योगिकी (उद्योगों और नगर पालिकाओं से तरल अपशिष्ट का निपटान)

(3) वर्मी उपचारात्मक प्रौद्योगिकी (दूषित भूमि के लिए उपचारात्मक प्रौद्योगिकी)

(4) वर्मी-जैविक प्रणाली में कृषि उत्पादन तकनीक (वर्मी-कम्पोस्ट द्वारा जैविक रासायनिक यौगिकों के साथ खाद्य और फसल सामग्री का उत्पादन)

(5) वर्मी - औद्योगिक वस्तुओं की उत्पादन तकनीक (वर्मी-औद्योगिक कच्चे माल या केंचुएं से सामग्री का उत्पादन)।

जैविक कचरे को उपयोग योग्य बनाने के लिए केंचुएं का सुनियोजित तरीके से उपयोग करना जरुरी है, ताकि वायु प्रदूषण, मिट्टी प्रदूषण, जल प्रदूषण के बिना जीवित रहने के लिए आवश्यक भोजन का उत्पादन कर सकें। इस प्रकार, विभिन्न खाद्य जनित बीमारियों और यहां तक की कैंसर को भी आसानी से रोका जा सकता है। इसलिए, इस केंचुए उर्वरक की क्रिया अब पूरी दुनिया में वैज्ञानिक और व्यावसायिक रूप से स्वीकृत है। दुनिया भर में केंचुएं की 7,500 प्रजातियों में से, 4,400 प्रजातियाँ आज महत्वपूर्ण हैं जो तेजी से जैविक कचरे का उपभोग करती हैं और इसे उपयोगी जैविक उर्वरकों में बदल देती हैं। हालाँकि, वे विभिन्न भौगोलिक स्थानों पर फैले हुए हैं।

केंचुए का महत्व

दुनिया भर में केंचुएं का महत्व बढ़ता जा रहा है। इसका मुख्य कारण भूमि की एक निश्चित इकाई पर कम से कम समय में फसलों की अधिकतम उपज प्राप्त करने का एक तरफा प्रयास है। लेकिन, आम किसानों में उर्वरक एवं उर्वरक प्रयोग नियमों की बुनियादी एवं उचित समझ कम है। आम किसानों का मानना है कि जमीन में जितना अधिक रासायनिक उर्वरक

डाला जाएगा, फसल की पैदावार उतनी ही अधिक होगी। रासायनिक उर्वरकों के प्रयोग से पौधों की तुरंत वृद्धि और सुधार देखा जा सकता है, लेकिन ज्यादातर मामलों में यह केवल दिखावे में बदलाव है, उपज में बिल्कुल भी वृद्धि नहीं। बल्कि कीटों की बहुतायत देखी जाती है। बेशक इसके पीछे पर्याप्त वैज्ञानिक तर्क और कारण मौजूद हैं। हालाँकि, यदि जैविक उर्वरकों का उपयोग मुख्य रूप से मिट्टी में किया जाता है, तो उपज पौधे की उपस्थिति के परिवर्तन के अनुरूप होती है। यद्यपि केंचुआ खाद के प्रयोग से पौधों की तात्कालिक वृद्धि एवं विकास विशेष रूप से नहीं देखी जाती है, तथापि अधिक उपज प्राप्त होती है। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि लगातार केवल रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग करके हम भूमि की प्राकृतिक विशेषताओं को नष्ट कर रहे हैं और उसे बंजर भूमि में बदल रहे हैं, जिसे केचुआ खाद के प्रयोग से पुनः सुधारा जा सकता है।

मिट्टी की उर्वरता

पहाड़ियों पर विभिन्न प्रकार के शैवाल, फफूंद और फ़र्न उगते हैं। बैक्टीरिया और वायरस चट्टान की सतह से मजबूती से जुड़े रहते हुए जैव रासायनिक चक्र में काम करते हैं। इन सबके अंतिम परिणाम के रूप में विभिन्न जैविक पदार्थ मिट्टी में मिल जाते हैं और मिट्टी की उत्पादक शक्ति बढ़ जाती है, क्योंकि नाइट्रोजन चक्र, फॉस्फेट चक्र, कार्बन चक्र आदि उत्पादन ऊर्जा के स्रोत शैवाल, बैक्टीरिया, फफूंद, कवक, फूल वाले पौधे आदि हैं। संक्षेप में, मिट्टी में जैव यौगिकों की उपस्थिति मिट्टी की उर्वरता की गुणवत्ता निर्धारित करती है अर्थात मिट्टी में जितने अधिक जैविक यौगिक मौजूद होंगे, मिट्टी उतनी ही अधिक उपजाऊ होगी।

जैविक उर्वरकों से खेती और किसान का मुनाफा

जैविक उर्वरकों से मिट्टी की उर्वरता बढ़ती है। जैविक उर्वरकों का उद्देश्य मिट्टी में पोषक तत्वों की कमी को पूरा करना है। जैविक उर्वरकों का उद्देश्य मिट्टी को नम और मजबूत रखना, मिट्टी के अंदर वायु संचार को सुविधाजनक बनाना और गर्मी का संरक्षण करना है। जैविक उर्वरकों के प्रोयोग से कई अतिरिक्त लाभ होते है।

- मिट्टी के स्वास्थ्य में सुधार करता है।
- मिट्टी में फॉस्फेट, सेल्युलोज आदि पोषक तत्वों के संवर्धन से मिट्टी की उर्वरता में जबरदस्त वृद्धि होती है।
- केंचुआ खाद में सामान्य जैविक पदार्थ की तुलना में 10-20 गुना अधिक सूक्ष्मजीव होते हैं।
- मिट्टी की गहराई में स्थित केंचुएं को आकर्षित करता है।
- मिट्टी की जल धारण क्षमता को बढ़ाता है। केंचुआ खाद तैयार करना केंचुआ खाद के लिए आवश्यक जैविक सामग्री
- **कृषि अवशेष :** धान और गेहूं का भूसा, मूंग, कलाई, सरसों, धान और गेहूं की भूसी, अनाज की भूसी, घरेलू सब्जियों का अवशेष, घास और विभिन्न खरपतवार, गन्ने के अवशेष।
- **जानवरों का मल-मूत्र :** पशु का गोबर, मुर्गी, बकरी, भेड़ का मल। लेकिन ध्यान रखें कि मुर्गी के मल में बहुत अधिक मात्रा में कैल्शियम फॉस्फेट और अन्य यौगिक होते हैं जो केंचुएं को नुकसान पहुंचा सकते हैं। इसलिए मुर्गी मल का प्रयोग संतुलित मात्रा में करना चाहिए। भेड़ की खाद के उपयोग से सब से पहले केंचुएं की वृद्धि धीमी हो जाती है।
- **बायो गैस अवशेष :** बायो गैस प्राप्त करने के बाद संयंत्र में बचा हुआ अवशेष।
- **पत्तियाँ :** धइंचा, सुबबुल, सिम्बा, सजना, फूलगोभी, पत्तागोभी, टमाटर, आलू, जलकुंभी आदि की पत्तियाँ और छिलके।
- **औद्योगिक अवशेष :** डेयरी उद्योग के अपशिष्ट, ब्रुअरीज, खाद्य प्रसंस्करण कारखानों के अवशेष कौन से अपशिष्ट पदार्थों का उपयोग नहीं किया जा सकता है ?
- न सड़ने वाली पत्तियाँ, प्याज के छिलके आदि
- मिर्च, अत्यधिक मसालेदार भोजन
- नींबू, इमली
- पॉलिथीन या प्लास्टिक पैकेट, सिंथेटिक कपड़े आदि
- अजैविक सामग्री जैसे ईंट के टुकड़े, कांच के टुकड़े, रसायन

आदर्श केंचुए की विशेषताएं

- विकास दर ऊंची हो
- भोजन का सेवन, पाचन और अवशोषण ज्यादा हो
- विभिन्न तापमानों और कठोर वातावरणों में जीवित रह सकता हो
- मृत्यु दर कम हो
- भोजन के रूप में विभिन्न प्रकार के जैविक पदार्थों का सेवन कर सकता हो
- उच्च कोकून उत्पादन दर
- अंडे सेने के बाद बच्चे फूटते हो
- रोग सहनशीलता अधिक हो
- अन्य केंचुएं के साथ सह-अस्तित्व में रह सकता हो।

उपयुक्त केंचुआ का चयन

केंचुएं को उनके आवास और भोजन प्रक्रिया के आधार पर तीन श्रेणियों में विभाजित किया गया है

एपिज़ोइक

ये केंचुए आकार में छोटे होते हैं। शरीर का रंग हर जगह एक जैसा होता है। वे विभिन्न जैविक पदार्थों से भोजन इकट्ठा कर सकते हैं। चूँकि इनकी प्रजनन एवं पुनर्जनन दर अधिक होती है, इसलिए केंचुआ खाद बनाने में इनकी उपयोगिता अधिक होती है।

एन्डोज़ोइक

ये आकार में छोटे या बड़े हो सकते हैं। हल्का रंग का होता हैं। वे मिट्टी की सतह पर रहते हैं और मिट्टी में मिश्रित जैविक पदार्थों पर भोजन करते हैं। इनका जीवन चक्र मध्यम होता है।

एनैक

ये आकार में बड़े हैं। मिट्टी की गहराई में रहता है और स्वभाव से रात्रिचर है। इनकी कोकून उत्पादन दर बहुत कम है।

इन तीन प्रकार के केंचुएं में से एपिज़ोइक केंचुए खाद बनाने के लिए आदर्श होते हैं। वे अपने शरीर के वजन से कहीं अधिक खाते हैं। यह भोजन पेट में टूट जाता है और विभिन्न एंजाइमों की मदद से पच जाता है। केंचुआ भोजन का 7-10 प्रतिशत भाग शारीरिक उद्देश्यों के लिए उपयोग करते हैं और बाकी को उत्सर्जन की प्रक्रिया के माध्यम से मल के रूप में उत्सर्जित करते हैं। यह मल ही केंचुआ खाद है। आम तौर पर 1000 जीवित केंचुएं का वजन 1 कि.ग्रा. होता है। अनुकूल

वातावरण में, 1000 केंचुए प्रतिदिन लगभग 5 कि.ग्रा. भोजन खाते हैं और प्रतिदिन 3 - 3.5 कि.ग्रा. केंचुआ खाद का उत्पादन करते हैं।

आइसेनिया फोटिडा

इनका मूल स्थान जर्मनी है। दुनिया भर में इस केंचुए का केंचुआ खाद के उत्पादन में किया जाता है। ये केंचुए नालियों, कूड़े के ढेरों, तालाबों, जल निकायों, जल उपचार संयंत्रों आदि में पाए जाते हैं। यह बाज़ार में लाल केंचुआ, भूरा केंचुआ, टाइगर केंचुआ आदि के रूप में उपलब्ध है।

विशेषताएँ

- इसका रंग लाल, भूरा होता है।
- पीठ के ऊपरी भाग पर 2 खंडों के साथ एक रंगीन बैंड दिखाई देता है।
- छाती का किनारा अपेक्षाकृत भूरे रंग का होता है।
- मजबूत प्रकार का है।
- वजन लगभग 1.5 ग्राम
- औसत जीवन काल 70 दिन है।
- एक केंचुआ प्रतिदिन लगभग 7 मिलीग्राम खाद तैयार कर सकता है।

यूड्रिलस यूजेनिया

इनका मूल स्थान पश्चिमी जर्मनी है। अमेरिका में भी उपलब्ध है। यह भारत में पुणे, दक्षिण कोंकण और त्रिवेन्द्रम में बड़ी मात्रा में पाया जाता है।

विशेषताएँ

- जीवित अवस्था में लाल, गहरा बैंगनी या तांबे जैसा रंग।
- लंबाई 32-140 मि.मी., व्यास 5-8 मि.मी. और शरीर145-198 खंडों में विभाजित है।
- इनकी वृद्धि बहुत तेजी से होती है।
- ठंडे और गर्म दोनों तापमानों का सामना कर सकता है।
- वजन लगभग 4.3 ग्राम
- औसत जीवन काल 1-3 वर्ष है
- एक केंचुआ प्रतिदिन लगभग 12 मि.ग्रा. खाद का उत्पादन कर सकता है।

पेरोनिक्स एक्सकैवेटस

इनका मूल निवास स्थान ऑस्ट्रेलिया या न्यूजीलैंड है। वर्तमान में हमारे देश में उपलब्ध है। दार्जिलिंग, कुमाऊँ, शिमला आदि स्थानों में पाया जाता है।

विशेषताएँ

- सामने का भाग गहरे बैंगनी से लेकर पीछे की ओर लाल भूरे रंग का होता है। नीचे का भाग हल्का रंग का होता है।
- इसकी लंबाई 23-120 मि.मी., व्यास 2.5 मि.मी. होता है।
- यह आर्द्रता की विभिन्न डिग्री को सहन कर सकता है।
- इसका वजन लगभग 0.6 ग्राम होता है।
- इसकी औसत जीवन काल 46 दिन होता है।

स्थानीय केंचुएं का उपयोग केंचुआ खाद बनाने में भी किया जा सकता है। प्रयोगों से पता चला है कि स्थानीय केंचुए और ईसेनिया फोएटिडा का एक साथ उपयोग करने से अच्छे परिणाम मिलते हैं।

- सबसे पहले एक छायांकित क्षेत्र का चयन करें। एक किलो गाय के गोबर को पानी में घोलकर उस छायादार स्थान पर 1 वर्ग मीटर क्षेत्र में फैला देना चाहिए।
- गोबर की कटाई को सड़ी पत्तियों से ढक देना चाहिए।
- पत्तों पर चाट का बोरा रखें।
- उसके उपर कभी-कभी पानी देना चाहिए।
- लगभग 14-15 दिनों के बाद क्षेत्र में बड़ी संख्या में स्थानीय केंचुए मिलेंगे। यदि उपरोक्त विधि से केंचुए न मिले तो 20 लीटर पानी में 1 किलो गुड़ और1 किलो गोबर मिलाकर सप्ताह में दो बार छिड़काव करना चाहिए।

केंचुआ खाद तैयार करना

केंचुआ खाद तैयार करने के तीन चरण होते हैं,

1. केंचुआ उत्पादन (वर्मी कल्चर)
2. केंचुआ खाद उत्पादन
3. केंचुआ संरक्षण (वर्मी संरक्षण)

चूँकि केंचुए मिट्टी में रहते हैं, इसलिए मिट्टी के कंटेनरों में केंचुए उगाना सबसे अच्छा है। इसका उत्पादन व्यावसायिक आधार पर लकड़ी के बक्सों या सीमेंट के बक्सों में भी किया जा सकता है।

प्रक्रिया

- 3 फीट : 3 फीट : 1.5 फीट का डिब्बा लेना चाहिए। यह लगभग 2000 केंचुए पैदा कर सकता है।
- बक्से का निचला भाग 2 इंच रेत से भरा होना चाहिए। रेत की परत के ऊपर जैविक पदार्थ की 3 इंच मोटी परत रखनी चाहिए । इसके ऊपर 2-3 दिन पुराना गोबर डालना चाहिए। यह ध्यान रखना चाहिए कि इसमें किसी भी प्रकार की मिट्टी नहीं मिलानी चाहिए। इसमें चावल की भूसी, गेहूं की भूसी, सब्जी के छिलके और जल कुंभी मिलाना चाहिए। इस परत के ऊपर थोड़ी सी जगह भर देनी चाहिए। बीच-बीच में पानी का छिड़काव करें। कभी भी पानी के ऊपर न जाएँ।

स्थानीय केंचुआ संग्रह विधि

केंचुआ उत्पादन (वर्मी कल्चर)

❖ फिर केंचुएं को डिब्बे में छोड़ दें। डिब्बे के ऊपरी हिस्से को गीली चाट की बोरी से ढक देना चाहिए। बक्से को छाया में रखना चाहिए और समय-समय पर पानी देना चाहिए। लगभग 1 महीने के बाद, ग्रब और केंचुए दिखाई देंगे।

केंचुआ खाद उत्पादन

पहली विधि : जमीन पर छेद करके

❖ जैविक पदार्थ : गोबर खाद : मिट्टी : गोबर = 6:0.5:0.5:3 मिलाकर एक ढेर में रख देना चाहिए। 20 दिनों के भीतर यह मिश्रण आंशिक रूप से विघटित हो जाएगा।

❖ 10 फीट : 3 फीट : 1.5 फीट का गड्ढा बनाना चाहिए। गड्ढे के ऊपर बांस और पुआल का छज्जा बनाना चाहिए और तारज़ली से घेर देनाचाहिए।

❖ गड्ढे के फर्श को 2 इंच मोटे ईंट के टुकड़ों या रेत से ढक देना चाहिए।

❖ इसके ऊपर रेत की एक और परत बना देनी चाहिए।

❖ केंचुए का बिस्तर बनाएं और उसके ऊपर पुआल की परत बिछा दें। याद रखें कि पूरा पुआल देना है। कटी हुई पुआल नहीं देनी चाहिए।

❖ फिर आंशिक रूप से विघटित जैविक पदार्थ को थोड़ा ठंडा करके भूसे पर फैला देना चाहिए। यह याद रखना चाहिए कि इस जैविक पदार्थ में 60 % पानी होना चाहिए।

❖ पूर्ण वयस्क केंचुएं को 1 कि.ग्रा./क्विंटल के हिसाब से जैविक सामग्री पर छोड़ना चाहिए।

❖ इस जैविक पदार्थ को गीली चाट की बोरियों से ढक देना चाहिए। ऐसे ही छोड़ दिया जाए तो 60-75 दिन बाद चाय के दानों जैसी खाद तैयार हो जाएगी।

❖ इस स्थिति में 3-4 दिन तक पानी न दें। चाट बैग निकालें और 7 इंच खाद निकाल लें।

डिब्बा

❖ फिर आंशिक रूप से विघटित जैविक पदार्थ को दोबारा फैलाएं।

दूसरी विधि : ज़मीन पर

❖ समतल, ऊँचे स्थान का चयन करें जहाँ पानी जमा न हो।

❖ इस स्थान पर 3 फीट चौड़ी और 15 फीट लंबी वेदी बनानी चाहिए।

❖ वेदी को मोटी मिट्टी से ढक देना चाहिए।

❖ वेदी पर 9-10 इंच आंशिक रूप से विघटित केंचुआ भोजन फैलाएं। फिर थोड़ा पानी छिड़कें। इस पर केंचुए छोड़े जाने चाहिए।

❖ केंचुएं पर आंशिक रूप से विघटित जैविक पदार्थों का ढेर बनाना चाहिए।

- इसे गीली चाट के थैले से ढक देना चाहिए।
- केंचुआ खाद का संग्रहण पूर्व बताये गये तरीके से करना चाहिए।

तीसरी विधि : चौबच्चा

- सबसे पहले 3-8 फीट लंबा, 2 फीट चौड़ा और 2-3 फीट या 1-1.5 फीट गहरा गड्ढा बनाएं।
- चौबच्चा पक्का, लकड़ी या टेराकोटा का हो सकता है।
- चौबाख की दीवार को मोटी मिट्टी से ढक देना चाहिए। चौबच्चा को भूसे, सूखी पत्तियों, गन्ने या नारियल के बुरादे से मोटा फैला देना चाहिए।
- केंचुआ भोजन को सब्सट्रेट पर ढीला फैलाना चाहिए। प्रत्येक 1 किलो जैविक सामग्री के लिए 10 केंचुए छोड़े जाने चाहिए। बोए गए केंचुए धीरे-धीरे भोजन में समा जाएंगे।

  भोजन में केंचुए निगलने के बाद बछड़े के मुंह को गीली चाटकी थैली से ढक देना चाहिए।

केंचुआ खाद की पोषक तत्व तुल्यता एवं मूल्य

उपरोक्त तालिका से, यदि रासायनिक उर्वरक 1 टन केंचुआ खाद की पोषक सामग्री के बराबर है तो किसान को 5048.00 रुपये का खर्च आएगा। वहां 1 टन केंचुआ खाद की उत्पादन लागत बहुत कम है। इसके अलावा, केंचुआ खाद के उपयोग से मिट्टी के स्वास्थ्य में काफी सुधार होता है और मिट्टी में महत्वपूर्ण मात्रा में जैविक कार्बन जुड़ जाता है, जिससे मिट्टी की संरचना में सुधार होता है। इसके अलावा, केंचुआ खाद में केंचुए के अंडे से उत्पन्न केंचुए मिट्टी की जल धारण क्षमता और वायु परिसंचरण क्षमता में काफी सुधार करते हैं।

वर्मीबेड वॉश

केंचुआ खाद के बिस्तर से निकला पानी टैंक में एकत्र किया जाता है। इस द्रव में केंचुए के शरीर से स्रावित रसायन और जैविक पदार्थ होते हैं। इसे एक संतुलित पादप उर्वरक कहा जा सकता है क्योंकि इस में घुलनशील आवश्यक पोषक तत्व, हार्मोन, विटामिन और एंटीबायोटिक्स होते हैं। एक भाग तरल और पांच भाग पानी का मिश्रण बनाकर किसी भी पौधे, विशेषकर सब्जियों पर छिड़कने से अच्छे परिणाम मिलते हैं।

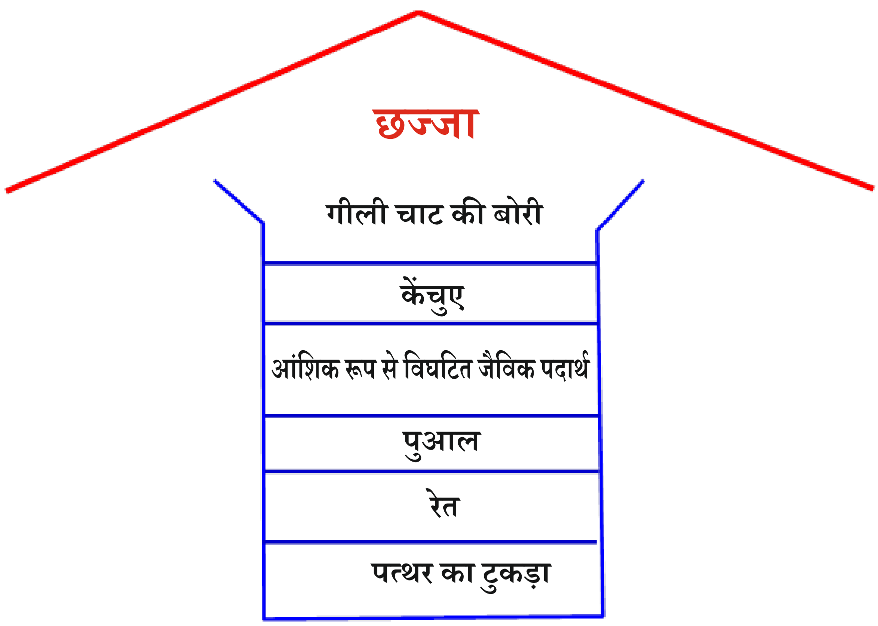

1 टन केंचुआ खाद में मौजूद पोषक तत्व		तत्व उर्वरक समतुल्यता	पोषक तत्व की काम करने वाले हिस्सा	उर्वरक समतुल्य	उर्वरक मूल्य (रु.)
नाइट्रोजन	13 कि.ग्रा.	27 कि.ग्रा. यूरिया	25%	108 कि.ग्रा. यूरिया	650.00
फ़ॉस्फोरस	22.5 कि.ग्रा.	137 कि.ग्रा. एस.एस.पी	40%	340 कि.ग्रा. एस.एस.पी	3400.00
पोटाश	10 कि.ग्रा.	16.5 कि.ग्रा. एम.ओ.पी	30%	50 कि.ग्रा. एम.ओ.पी	1500.00
				मोट	5550.00

केंचुआ खाद एवं गोबर खाद की तुलना

पोषक तत्व	केंचुआ खाद	गोबर का खाद
नाइट्रोजन	0.8-1.0%	0.5 – 0.75%
फास्फोरस	2.00 – 2.45%	0.25 – 0.27%
पोटैशियम	0.8-1.1%	0.3 – 0.55 %
कैल्शियम	0.44%	0.91%
मैगनीशियम	0.15%	0.19%
लोहा	175.2 एमएल/किलो	146 एमएल/किलो
मैंगनीज	96.5 एमएल/किलो	69 एमएल/किलो
जस्ता	24.5 एमएल/किलो	14.5 एमएल/किलो
ताँबा	4.9 एमएल/किलो	2.0 एमएल/किलो

उच्च गुणवत्तायुक्त केंचुआ खाद बनाने की विधि

बेहतर केंचुआ खाद बनाने के लिए प्राकृतिक कार्बनिक और खनिज पदार्थ को बिस्तर में मिलाया जाता है। लेकिन इन पदार्थों को 20 प्रतिशत से अधिक नहीं मिलाना चाहिए। उदाहरण के लिए नाइट्रोजन प्रदान करने के लिए किसी भी तिलहन की भूसी, हरीखाद, दालों और चावल की भूसी आदि को मिलाया जा सकता है। फॉस्फोरस की आपूर्ति के लिए रॉक फॉस्फट, बेसिक स्लैग, हॉर्सरैडिश और फिशमील का उपयोग किया जा सकता है। पोटाश की आपूर्ति के लिए फेल्डस्पार, चूरा, चूरा और सैपवुड का उपयोग किया जा सकता है। इन सामग्रियों को अन्य कार्बनिक पदार्थों के साथ मिलाने से केंचुआ खाद की गुणवत्ता बढ़ जाती है।

चित्र : कृषि विज्ञान केन्द्र, वर्धमान में वर्मी कम्पोस्टिंग पर प्रशिक्षण

पटसन खेती में भूमि जल जमाव का प्रबंधन

देबारती दत्ता, ए.के. सिंह, सौरव घोष, धनंजय बर्मन, एन.एम. आलम, आर.के. नायक एवं गौरांग कर
भाकृअनुप – केन्द्रीय पटसन एवं समवर्गीय रेशा अनुसंधान संस्थान, बैरकपुर, कोलकाता -700121

पौधों की वृद्धि एवं मृदा गुणों को संतुलित रखने में मृदा जल स्तर की एक महत्वपूर्ण भूमिका होती है, किन्तु यही मृदा जल यदि आवश्यकता से अधिक या कम हो जाए तो मृदा गुणों के साथ-साथ पौधे के वृद्धि को भी प्रतिकूल रूप से प्रभावित करती है। ऐसी मृदा जिसमें वर्षा, बाढ़ अथवा सिंचाई के कारण लंबे समयावधि तक अत्यधिक जल एकत्रित हो और उसमें लगातार वायु संचार में कमी बनी रहे, उस स्थिती को मृदा जल मग्नता अथवा जल जमाव कहते हैं। मृदा की इस दशा के कारण भौतिक, रासायनिक एवं जैव गुणों में अभूतपूर्व परिवर्तन हो जाता है और ऐसी मृदा में फसलोत्पादन लगभग असंभव हो जाता है। इस परिस्थिति में जल निकास की उचित व्यवस्था द्वारा मृदा गुणों को पौधे की आवश्यकतानुसार परिवर्तन करके फसल उत्पादन संभव किया जा सकता है। लगभग सभी प्रकार के पौधों की अच्छी वृद्धि एवं पैदावार के लिए अधिकतम 75% तक ही मृदा रन्ध पानी से तृप्त होते हैं और 25% रंध्र हवा के आदान प्रदान के लिए आवश्यक होते हैं। इसके कारण जड़ श्वसन क्रिया से कार्बन डाइऑक्साइड का निष्कासन और वायुमंडल से ऑक्सीजन का प्रवेश संभव हो पाता है, जो पौधों की जड़ों को घुटन से बचाता है। मृदा संघनन, भूमिगत जल स्तर का ऊपर होना, चिकनी मिट्टी या मृत्तिका (clay) एवं मृदा क्षारीयता इत्यादि परिस्थितियां जल मग्नता को प्रोत्साहित करती है।

वैश्विक भूमि क्षेत्र के लगभग 10% को जल भराव प्रभावित करता है और फसल की उपज को काफी कम कर देता है। जलवायु परिवर्तन के रुझानों के अनुसार, भविष्य में जलभराव का खतरा बढ़ जाएगा, जिससे अनुसंधान एवं भूमि प्रबंधन हेतु एक चुनौती पेश होगी। जलयुक्त मिट्टी में, जड़ वातावरण में कार्बन डाइऑक्साइड और एथिलीन की सांद्रता बढ़ जाती है, मिट्टी के बैक्टीरिया की आबादी में परिवर्तन से गहन डी-नाइट्रीकरण होता है और अमोनियम और पॉलीफेनोलिक यौगिकों का संचय होता है। इसके साथ ही कुछ पोषक तत्व, जैसे नाइट्रोजन और सल्फर की उपलब्धता कम हो जाती है। दूसरे रूप में, अन्य पोषक तत्व जैसे फॉस्फोरस, आयरन, जिंक, मैंगनीज अपनी उपलब्धता बढ़ाते हैं, यहाँ तक कि विषाक्त स्तर तक भी पहुँच जाते हैं। पौधे स्पष्ट रूप से विपरीत रणनीतियों को अपनाकर एनोक्सिया प्रतिक्रिया करते हैं, जैसे पूर्ण विकास रुकने तक चयापचय में कमी, या लैक्टिक या इथेनॉल की सक्रियता। इसके अलावा, कई प्रजातियाँ जलमग्न भागों में ऑक्सीजन की आपूर्ति बढ़ाने के लिए एरेन्काइमा ऊतक बना सकती हैं। अधिकांश फसलें जल भराव के प्रति संवेदनशील होती हैं, हालाँकि, क्षति की सीमा प्रजातियों, विकास के चरण और तनाव के समय की जलवायु परिस्थितियों पर निर्भर करती है।

मृदा जल मग्नता को प्रोत्साहित करने वाले कारक

- **जलवायु :** अधिक वर्षा के कारण पानी का उचित निकास नहीं होने से सतह पर वर्षा जल एकत्रित हो जाता है।
- **बाढ़ :** सामान्य रूप में बाढ़ का पानी खेतों में जमा होकर जल मग्नता की स्थिति पैदा कर देता है।
- **नहरों से जल रिसाव :** नहर के आसपास के क्षेत्रों में लगातार जल रिसाव के कारण जल मग्नता की स्थिति सदैव बनी रहती हैं।
- **भूमि आकार :** स्थलाकृति प्राकृतिक जल निकासी को भी प्रभावित करती है। तालनुमा भूमि आकार होने के कारण अन्यंत्र उच्च क्षेत्रों से प्रवाहित जल इकट्ठा होता रहता है जो मृदा जल मग्नता का कारण बनता है। ढलान वाले इलाकों से पानी जल्दी निकल जाता है। गड्ढों वाले समतल या अनियमित भू-भाग पर जल निकासी बहुत खराब होती है।
- **अनियंत्रित एवं अनावश्यक सिंचाई :** आवश्कता से अधिक सिंचाई मृदा सतह पर जल जमाव को प्रोत्साहित

करता है जो जल मग्नता का कारण बनता है।

- **जल निकास :** उचित निकास की कमी या व्यवस्था न होने से क्षेत्र विशेष में जल मग्नता हो जाती है।
- **मृदा की पारगम्यता** (Soil permeability) **:** विभिन्न प्रकार की मिट्टी में अलग-अलग संरंध्रता और जल पारगम्यता होती है। उदाहरण के लिए, दोमट मिट्टी अन्य प्रकार की मिट्टी की तुलना में अधिक पारगम्य और छिद्रपूर्ण होती है। अत्यधिक वर्षा के आगमन पर, चिकनी मिट्टी की तुलना में दोमट मिट्टी अधिक पानी सोखती है और मिट्टी पर जल-जमाव के प्रभाव को रोकती है या कम करती है।
- **अभेद्य बाधा की उपस्थिती:** मिट्टी के नीचे रिसने वाला पानी क्षैतिज या पार्श्व रूप से चलता है। यह एक अभेद्य बाधा का सामना कर सकता है, जिसके कारण बाधा के ऊपर की ओर भूजल स्तर में वृद्धि हो सकती है। इसी तरह, यह संभव है कि एक अभेद्य परत प्रवेशी मिट्टी की ऊपरी परतों के नीचे हो सकती है। इस स्थिति में भी, प्रवेशी मिट्टी के माध्यम से रिसने वाला पानी गहराई तक नहीं जा पाता है और इसलिए जल स्तर में तेजी से वृद्धि होती है।

मृदा जल मग्नता का प्रभाव

- **मृदा वायु संचार में कमी :** मृदा जल मग्नता के कारण मिट्टी के रंध्रों में उपस्थित हवा बाहर निकल जाती है और सम्पूर्ण रन्ध्र जल तृप्त हो जाते हैं और साथ ही वायुमंडल से हवा का आवागमन अवरुद्ध हो जाता है। इस परिस्थिति में मृदा के अंदर वायु संचार में भारी कमी आ जाती है।
- **मृदा गठन :** पानी के लगातार गतिहीन दशा में रहने के कारण मृदा गठन पूर्णतया नष्ट हो जाता है और फलस्वरूप मिट्टी का घनत्व बढ़ जाता है जिससे मिट्टी सख्त/ठोस हो जाती है।
- **मृदा तापमान :** मृदा जल मग्नता मृदा ताप को कम करने में सहायक होती है। नम मिट्टी की गुप्त ऊष्मा शुष्क मिट्टी की तुलना में ज्यादा होती है जो जीवाणुओं की क्रियाशीलता और पोषक तत्वों की उपलब्धता को प्रभावित करती है।
- **पोषक तत्वों की उपलब्धता :** सामान्यतः जल मग्नता की दशा में उपलब्ध पोषक तत्व जैसे नाइट्रोजन, फास्फोरस, पोटाश, गंधक तथा जिंक इत्यादि की कमी हो जाती है। इसके विपरीत फॉस्फोरस एवं आयरन की अधिकता के कारण इनकी विषाक्ता के लक्षण दिखाई पड़ने लगते हैं।
- **पौधों पर प्रभाव :** मृदा जल मग्नता में वायु संचार की कमी के कारण फसल जीवित नहीं रह पाती है। ऐसी परिस्थिति में कुछ जहरीले पदार्थों जैसे हाइड्रोजन सल्फाइड, ब्युटारिक एसिड तथा कार्बोहाइड्रेट के

चित्र 1: जल भराव पटसन में पत्तों का पीला होना तथा झड़ जाना, पत्तों का नीचे की ओर मुड़ना

अपघटन के कारण पौधों के स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव डालते हैं। जल मग्नता में उत्पन्न होने वाले ईथीलीन जड़ के विस्तार को रोकता है। जल मग्नता का पौधों पर प्रतिकूल प्रभाव होने के कारण प्रमुख लक्षण तुरंत परिलक्षित होते हैं जैसे पत्तों का कुम्हलाना, किनारे से पत्तों का नीचे की ओर मुड़ना तथा झड़ जाना, तनों के वृद्धि दर में कमी, पत्तों का पीला होना, द्वितीयक जड़ों का निर्माण, जड़ों की वृद्धि में कमी तथा पैदावार में भारी कमी इत्यादि।

- ❖ **कृषि कार्यों में कठिनाइयाँ :** कई कृषिकार्य जैसे निराई, जुताई, रोपण शुष्क वातावरण में सबसे अच्छा किया जाता है। यह किसानों को खेत पर कई गतिविधियाँ करने से रोकता है या उन गतिविधियों को निष्पादित करना कठिन बना देता है।
- ❖ **पर्यावरण प्रदूषण :** इससे पर्यावरण में जल प्रदूषण होता है। संचित जल सूक्ष्मजीवों के विकास के लिए माध्यम का काम करता है। इसमें गंदगी और अवांछित वस्तुएं भी हो सकती हैं जिससे पर्यावरण को बड़ा ख़तरा हो सकता है।

पटसन में जल भराव से हानि

पटसन दुनिया का दूसरा सबसे बड़ा प्राकृतिक बास्ट रेशा फसल है, जिसके न केवल रेशा के रूप में बल्कि कई औद्योगिक सामग्रियों के रूप में भी विविध उपयोग हैं। पटसन को एक महत्वपूर्ण नकदी फसल माना जाता है और इसका भोजन, रेशा, ईंधन, औद्योगिक सामग्री, मिट्टी संवर्धन आदि बहुउद्देशीय उपयोग होता है। पटसन रेशा 100% बायोडिग्रेडेबल और पर्यावरण-अनुकूल है। जलवायु परिवर्तन के कारण पौधे सूखा, गर्मी, ठंड, धातु विषाक्तता और बाढ़ जैसे विभिन्न तनावों का अनुभव करते हैं। अजैविक तनाव पटसन की चयापचय गतिविधियों, विकास, रेशा उपज और गुणवत्ता को नकारात्मक रूप से प्रभावित करता है। इसलिए अजैविक तनाव प्रतिक्रियाओं और सहनशीलता तंत्र को समझने से पादप जीव विज्ञानियों तथा कृषि विदों को जलवायु-स्मार्ट पटसन किस्मों और प्रतिकूल पर्यावरणीय परिस्थितियों के लिए उपयुक्त कृषि तकनीक विकसित करने में मदद मिलेगी।

पटसन उत्पादन के लिए तापमान और वर्षा सबसे प्रमुख घटक हैं। हाल के वर्षों में तापमान और वर्षा में उतार-चढ़ाव देखा गया है और परिणामस्वरूप पटसन का उत्पादन घट रहा है। टिकाऊ कृषि के लिए जल भराव को मुख्य बाधाओं में से एक माना जाता है। पटसन जलभराव के प्रति अधिक संवेदनशील होते हैं-

- ❖ जब अंकुरों ने स्वस्थ जड़ों के लिए आवश्यक कार्बोहाइड्रेट का उत्पादन कम हो जाता है (कम पत्ती क्षेत्र

चित्र 2 : अच्छे जल निकास वाले पटसन खेती बनाम जल भराव पटसन

और कम सौर ऊर्जा के साथ)।

- जब वे तेजी से बढ़ रहे हों और पोषक तत्वों की मांग बढ़ गई हो अर्थात पटसन परिपक्व अवस्था में जल-जमाव के प्रति सहनशील होता है, परन्तु अंकुरण अवस्था में, यह जल-जमाव के प्रति अधिक संवेदनशील हो जाता है।
- जल-जमाव के कारण कुछ ही दिनों में जड़े नष्ट हो जाती है। जड़ के शीर्षों के नष्ट होने से जल-भराव के बाद पोषक तत्वों (विशेष रूप से नाइट्रोजन) और पानी का अवशोषण सीमित हो जाता है। जल-जमाव से मिट्टी में हाइपोक्सिया स्थिती पैदा होता है, जो पौधों की वृद्धि में कमी, पत्ती क्षेत्र में कमी, रंध्र बंद होने आदि का कारण बनता है। आरओएस (ROS) उत्पादन के कारण, पौधों को जल भराव की स्थिति में ऑक्सीडेटिव क्षति का सामना करना पड़ता है। आरओएस झिल्ली की अखंडता को भी नुकसान पहुंचाता है और पीएस-II की दक्षता को भी कम करता है। जल भराव से पटसन फसलों की पैदावार 50% तक कम हो सकती है।

  क्रिजैफ के अध्ययन के अनुसार, 55 दिन की ओलिटोरियस फसल पर 5, 10, 15, 20, 25 और 30 से.मी. स्थिर जल सतर के प्रभाव से पौधों की ऊँचाई, बेसल व्यास और प्रकाश संश्लेषक दर में क्रमश: 40, 41 और 56% तक की कमी, रेशे की पैदावार में 20-60% कमी, फाइबर की लंबाई में कमी (11-43%) और फाइबर की ताकत (12-55%) में कमी पायी गयी। *कैप्सुलरिस* (डी 154 और सीवीएल-1) और *ओलिटोरियस* (ओ-4 और आर-26) के चार जीनोटाइप पर खड़े पानी के विभिन्न स्तर पर पौधों की ऊँचाई में गंभीर कमी पाई गयी। सीवीएल-1, डी-154, ओ-4, और आर-26 जीनोटाइप में क्रमशः 45, 39, 59 और 61% तक कम ऊँचाई पाया गया, जब 30 दिन की फसल पर 5 से.मी. स्थिर जल स्तर बनाए रखा गया था। हालाँकि, जब परिपक्क अवस्था (90 दिन) में 30 से.मी. स्थिर जल स्तर बनाए रखा गया, तो पौधे की ऊंचाई में कमी, पिछले समय की तुलना में बहुत कम (3, 3, 9 और 12%) थी। जब 30 दिन की फसल पर 5 से.मी. स्थिर जल स्तर बनाए रखा गया, तब डी-154, सीवीएल-1, ओ-4 और आर-26 जीनोटाइप के तने के व्यास में क्रमशः 37, 30, 40 और 36% की कमी पायी गयी। हालाँकि, परिपक्व अवस्था में, 30 से.मी. स्थिर जल स्तर पर भी यह कमी 0.6, 3, 9 और 8% थी। यह परिपक्व अवस्था में पटसन की जल भराव के प्रति सहनशीलता को इंगित करता है। अन्य किये गए शोध में *ओलिटोरियस* पौधों को जलभराव की पांच अलग-अलग अवधि (45, 60, 75, 90 और 105 दिन) में उगाया गया और जलभराव की अवधि में वृद्धि के साथ विकास और उपज मापदंडों में कमी देखी गई। 105 दिन के जलभराव पर, पौधों की ऊंचाई (53%), तने का व्यास (36%), पत्ती क्षेत्र (73%), जड़ की लंबाई (71%) और उपज (75%) में गंभीर कमी दर्ज की गई। उनके अनुसार जल जमाव में, *ओलिटोरियस* पौधों में ऐरेन्काइमा कोशिका का निर्माण देखा गया, जिसे जल जमाव की स्थिति में पौधे के जीवित रहने का प्रमुख कारक माना जाता है। जड़ कोशिकाओं में एक कैस्पेरियन बैंड और लिग्निफाइड कोशिका भी पाया गया, जो जड़ को टूटने से बचाती है। *कैप्सुलरिस* पौधों में जल जमाव की स्थिति (2 से.मी. खड़े पानी) में ऐरेन्काइमा का निर्माण और एपिडर्मल कोशिकाओं के आकार में कमी और मज्जा के आकार में वृद्धि भी देखी गयी। एक अन्य शोध में 30 दिन की फसल पर जलभराव के कारण पौधे की ऊंचाई में 30-35% एवं रेशा उपज में 39-44% की कमी देखी गई।

मृदा जल मग्नता का प्रबन्धन

अजैविक तनाव के नकारात्मक प्रभाव को कम करने के साथ-साथ टिकाऊ उत्पादन बनाए रखने के लिए विभिन्न संभावित दृष्टिकोण अपनाए जा सकते हैं। बुआई के समय का समायोजन, पोषक तत्व प्रबंधन, कार्बनिक पदार्थ प्रबंधन, जुताई, उचित सिंचाई, अच्छी जल निकासी और सहिष्णु किस्मों का उपयोग जैसी कृषि संबंधी प्रथाएं अजैविक तनाव के नकारात्मक प्रभावों को कम करने में मदद करती हैं।

- **तनाव-सहिष्णु किस्में :** पैदावार बढ़ाने और रेशे की गुणवत्ता में सुधार करने के लिए पादप जीव विज्ञानिकों को विभिन्न प्रकार के अजैविक तनाव के तहत पौधों की वास्तविक प्रतिक्रियाओं को जानना चाहिए। तनाव-सहिष्णु किस्मों को विकसित करके अजैविक तनाव के कारण उपज हानि को प्रभावी ढंग से कम किया जा सकता है। हाल ही में, पटसन की तनाव सहनशीलता विकसित करने के लिए कई आनुवंशिक और आणविक तकनीकों

का उपयोग किया गया है।

❖ **शीघ्र बुआई :** फसल की बुआई के समय में बदलाव करके किसान कुछ मामलों में तनाव की स्थिति से बच सकते हैं। यद्यपि पटसन परिपक्व अवस्था में जल-जमाव को सहन करता है, लेकिन वानस्पतिक अवस्था में वे 30 दिन तक जल-जमाव का सामना नहीं कर सकते हैं। भारी वर्षा के कारण होने वाले जलभराव से बचने के लिए जल्दी बुआई एक प्रभावी तरीका हो सकता है।

❖ **गहरी जुताई और उपमृदा खाद :** सघन मिट्टी प्रबंधन करने के लिए गहरी जुताई का सुझाव दिया गया है, जिससे जल निकासी में सुधार हो सके। क्षारीयता को कम करने और मिट्टी की संरचना में सुधार करने के लिए जिप्सम को भी शामिल किया जा सकता है, जो जलभराव को भी कम करता है। जलभराव को कम करने का एक अन्य तरीका कार्बनिक पदार्थों के प्रयोग से है जो भारी मिट्टी की परतों के भीतर रखे जाते हैं। इस प्रथा को उप-मृदा खाद (sub-soil manuring) कहा जाता है।

❖ **लकीरें और खाँचे** (Ridge and Furrow) **तकनीक :** जलभराव की स्थिति में फसल की उपज, मिट्टी की संरचना और पटसन उत्पादकता में सुधार के लिए Ridge and Furrow तकनीक का उपयोग एक महत्वपूर्ण विकल्प है। यह जलभराव को कम करता है और नियमित अंतराल पर लगभग 15-20 से.मी. चौड़ी नाली स्थापित करके समग्र मिट्टी की संरचना में सुधार करता है।

❖ **पोषक तत्वों का अनुप्रयोग :** पोषक तत्वों की कमी पौधों पर जलभराव के प्रमुख प्रभावों में से एक है, जिसके परिणामस्वरूप प्रकाश संश्लेषण और शुद्ध कार्बन निर्धारण में कमी आती है, जिससे अंततः विकास और उपज में भी कमी आती है। दक्षता वाले नाइट्रोजन उर्वरक जैसे कि धीमी गति या नियंत्रित-रिलीज उर्वरकों का उपयोग जलभराव की स्थिति में पौधों की वृद्धि और विकास में सुधार करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। धीमी गति से निकलने वाला उर्वरक फसल वृद्धि के दौरान लंबी अवधि तक नाइट्रोजन जारी कर सकता है। पोटेशियम उर्वरक गन्ना, सरसों या राई और कपास सहित कई फसलों में जलभराव के हानिकारक प्रभावों को कम करता है। गीले मौसम के दौरान फॉस्फोरस कमी की स्थिति में इष्टतम पैदावार प्राप्त करने के लिए गोबर खाद और बोन मील जैसे विभिन्न फॉस्फोरस स्रोतों का बहिर्जात अनुप्रयोग प्रभावी है। इसी प्रकार, बोरान का पत्तों पर प्रयोग से समग्र मक्के पौधों की वृद्धि और जलभराव के हानिकारक प्रभाव को कम किया जा सकता है।

❖ **पादप वृद्धि नियामक (पीजीआर) :** ऑक्सिन और साइटोकिनिन जैसे पीजीआर के अनुप्रयोग से जलभराव की स्थिति में पौधों की वृद्धि में सुधार मिली है। शोध के अनुसार कपास के पौधे में, जल-जमाव पूर्व एब्सकिसीक एसिड के पत्ते के अनुप्रयोग ने पत्ती के प्रकाश संश्लेषण में सुधार करके जल-जमाव-प्रेरित चोट के प्रति सहनशीलता बढ़ा देती है। हालाँकि, जलभराव से होने वाले नुकसान को कम करने के लिए पीजीआर का व्यावसायिक उपयोग बहुत कम हुआ है और इस पर शोध जारी है।

❖ **उर्वरक और विकास नियामकों का संयुक्त अनुप्रयोग :** उर्वरकों और विकास नियामकों का संयुक्त अनुप्रयोग फसलों में जलभराव के हानिकारक प्रभावों को सुधारने के लिए एक और विकल्प प्रदान कर सकता है, जिसमें उर्वरक पोषक तत्व आपूर्तिकर्ता के रूप में कार्य करते हैं, जबकि पीजीआर शारीरिक चोट से उबरने में सहायता करते हैं। पर्ण पोषक तत्व और पीजीआर अनुप्रयोग दोनों ही भविष्य के अनुसंधान के लिए अवसर प्रदान करते हैं।

❖ **एंटी-एथिलीन एजेंटों का उपयोग और हाइड्रोजन पेरोक्साइड के साथ पूर्व-उपचार :** हाइपोक्सिया स्थिती में पौधों की वृद्धि और उपज में हानि, एथिलीन के बढ़ते संचय का परिणाम हो सकती है। 1-मिथाइलसाइक्लोप्रोपीन (1-एमसीपी), अमीनो एथोक्सीविनाइल ग्लाइसिन (एवीजी), 1-एमिनोसाइक्लोप्रोपेन-1 कार्बोक्जिलिक एसिड (एसीसी), अमीनो एथोक्सीएसिटिक एसिड (एओए), सिल्वर और कोबाल्ट आयन जैसे एंटी-एथिलीन एजेंटों का उपयोग एथिलीन के संश्लेषण या संचय को रोकने में सहायक होता है। हाइड्रोजन पेरोक्साइड के साथ फसलों का पूर्व उपचार फसलों को जलभराव, उच्च प्रकाश तीव्रता, कम तापमान, नमक तनाव, सूखा और भारी धातुओं के संपर्क से होने वाली ऑक्सीडेटिव क्षति से बचाव कर सकता है।

हाइड्रोजन पेरोक्साइड के साथ बीजों का प्राइम/पूर्व-उपचार करने से शुद्ध प्रकाश संश्लेषक दर, जड़ की मात्रा, उच्च बायोमास संचय और तने के व्यास में वृद्धि पायी गयी है।

- **भूमि का समतलीकरण :** भूमि की सतह के समतल होने से अतिरिक्त पानी का जमाव नहीं होता और प्राकृतिक जल निकास शीघ्र हो जाता है।
- **नियंत्रित सिंचाई :** अनियंत्रित सिंचाई के कारण जल मग्नता की स्थिति पैदा हो जाती है। अतः ऐसी परिस्थिति में नियंत्रित सिंचाई प्रदान करके इस समस्या का समाधान किया जा सकता है। पटसन में सूक्ष्म सिंचाई के अनेकों लाभ हैं और इसके व्यव्हार से जलमग्नता को भी रोका जा सकता है।
- **नहरों के जल रिसाव को रोकना :** नहर द्वारा सिंचित क्षेत्रों में जल रिसाव के कारण जल मग्नता की स्थिति बनी रहती है। अतः नहरों तथा नालियों द्वारा होने वाले जल रिसाव को रोक कर इस समस्या को कम किया जा सकता है।
- **बाढ़ की रोकथाम :** बाढ़ प्रभावित क्षेत्रों में अधिकांश खेती योग्य भूमि जलमग्न हो जाती है और फसल का बहुत बड़ा नुकसान हो जाता है। अतः इन क्षेत्रों में नदी के किनारों पर बाँध बनाकर जल प्रवाह को नियंत्रित किया जा सकता है।
- **जल निकास :** भू-क्षेत्र में अतिरिक्त सतही या भूमिगत जल जमाव को प्राकृतिक या कृत्रिम विधियों द्वारा बाहर निकालने की प्रक्रिया को जल निकास कहते हैं। जल निकास का मुख्य उद्देश्य मिट्टी में उचित वायु संचार के लिए ऐसी परिस्थिति का निर्माण करना है जिससे पौधों की जड़ों को ऑक्सीजन की उचित मात्रा प्राप्त होती रहे। जल निकास के फलस्वरूप भूमि की उपजाऊ शक्ति को बढ़ाया जा सकता है। जुताई, गुड़ाई, पौधे रोपण, बुआई, अन्य कृषि क्रियाएँ, कटाई एवं सिंचाई स्तर में सुविधापूर्ण समानता आ जाती है। यांत्रिक कृषि कार्य में ट्रैक्टर इत्यादि का इस्तेमाल भी सुविधाजनक हो जाता है। उचित जल निकास द्वारा नाइट्रोजन ह्रास को कम करने में आशातीत सफलता मिलती है।
- **क्षारीय जलका उपयोग न करना :** सिंचाई में उपयोग किया जाने वाला क्षारीय जल मिट्टी को प्रभावित करता है और भविष्य में जलभराव के प्रति अधिक संवेदनशील बनाता है। इस कारण सिंचाई के लिए क्षारीय जल का उपयोग नहीं करना चाहिए।

फसल उत्पादन प्रणालियों में जलभराव को कम करने के लिए कई मिट्टी और फसल प्रबंधन प्रथाओं को नियोजित किया गया है। ज्यादा जलभराव स्थिती में, जल निकासी और फसल प्रबंधन का संयोजन सबसे महत्वपूर्ण कदम होगा। कम जलभराव के लिए सहनशील किस्मों का चयन करना या उचित कृषि पद्धतियों को लागू करना प्रभावी हो सकता है। विभिन्न प्रकार के पोषक तत्वों, फाइटोहोर्मोन, नैनो-कणों आदि के अनुप्रयोग के माध्यम से विभिन्न कृषि प्रबंधन प्रथाओं के कार्यान्वयन से पौधों की वृद्धि की स्थिति में सुधार और यह अजैविक तनाव के नकारात्मक प्रभाव को कम करने के लिए एक सहायक उपकरण हो सकता है। कई अन्य फसलों के विपरीत, अजैविक तनाव के प्रति पटसन की प्रतिक्रिया बहुत जटिल है और ऐसी प्रतिक्रियाएँ पौधे की उम्र, प्रजाति और जीनोटाइप पर निर्भर करती हैं। इसलिए जलवायु परिवर्तन के युग में पटसन उत्पादन में सतत विकास हासिल करने के लिए पादप शरीर क्रिया विज्ञान, कृषि विज्ञान और पादप प्रजनन को एकीकृत होकर शोध करने की जरूरत है।

कृषि यंत्रीकरण के व्यापक उपयोग में कृषि सेवा केन्द्र की भूमिका

शैलेश कुमार, माणिक लाल राय, ष्मना ए. एवं सुनीति कुमार झा

भाकृअनुप – केन्द्रीय पटसन एवं समवर्गीय रेशा अनुसंधान संस्थान, बैरकपुर, कोलकाता -700121

भारत के बहुसंख्यक कृषक समुदाय के अथक प्रयास से हमारा देश खाद्यान्न उत्पादन में आत्मनिर्भर हो चुका है जिसमें हरित क्रांति, श्वेत क्रांति, नील क्रांति आदि उल्लेखनीय है। इस अवधि में केन्द्र एवं राज्य सरकारों द्वारा कृषि यंत्रों के अधिक से अधिक प्रयोग पर भी विशेष बल दिया गया, परंतु लघु एवं सीमांत श्रेणी के कृषक वर्गों के बीच अनेक कारणों से यह लोकप्रिय नहीं हो पाई। देश में यदि हम देखे तो क्षेत्रवार कृषि यंत्रीकरण का स्तर बहुत ही भिन्न है। देश के उत्तरवर्ती राज्यों जैसे पंजाब, हरियाणा और उत्तर प्रदेश में कृषि यंत्रों का उपयोग अधिकतम जबकि देश के पश्चिमी, पूर्वोत्तर और मध्यवर्ती राज्यों जैसे राजस्थान, महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, झारखंड, ओड़ीशा में कृषि यंत्रों का उपयोग न्यूनतम है। एक आंकलन के अनुसार वर्ष 2016-17 के अंत तक देश में औसत उपलब्ध कृषि ऊर्जा 2.03 कि.वाट/हे. थी। देश की बढ़ती माँग के अनुरूप फसल उत्पादकता बढ़ाने के लिए वांछित तीव्रता के साथ और अधिक कृषि ऊर्जा उपभोग की आवश्यकता है। इस उद्देश्य हेतु आवश्यक कृषि ऊर्जा का अनुमान वर्ष 2022 तक 2.5 कि.वाट/हे. एवं 2030 तक 4.00 कि.वाट/हे.(तालिका1) व्यक्त किया गया है।

तालिका 1 : उपलब्ध कृषि ऊर्जा और वर्ष 2022 व 2030 तक कृषि ऊर्जा की आवश्यकता

राज्य	उपलब्ध कृषि ऊर्जा (किलोवाट/है.)		
	2016-17	**2022**	**2030**
आंध्र प्रदेश	2.14	2.52	3.72
असम	0.99	1.18	1.97
बिहार	2.80	3.29	4.81
झारखण्ड	1.21	1.54	2.65
गुजरात	2.57	3.04	4.52
हरियाणा	4.32	4.58	7.51
हिमाचल प्रदेश	1.14	1.41	2.29
जम्मू एवं कश्मीर	1.12	1.47	2.70
कर्नाटक	2.14	2.67	4.43
केरल	1.10	1.33	2.10
महाराष्ट्र	1.19	1.59	3.01
मध्य प्रदेश	1.49	1.81	3.79
छत्तीसगढ़	1.25	1.61	2.86
ओड़ीशा	1.65	1.96	2.93
पंजाब	4.40	5.45	7.89
राजस्थान	1.37	1.69	2.70
तमिलनाडु	2.91	3.72	6.46
तेलंगाना	2.89	3.51	5.50
उत्तर प्रदेश	2.84	3.49	6.12
उत्तराखण्ड	2.64	3.32	5.58
पश्चिम बंगाल	1.87	2.25	3.97
अरुणाचल प्रदेश	0.46	0.69	1.57
मणिपुर	0.50	0.77	1.39
मेघालय	0.29	0.47	0.75
मिजोरम	0.48	0.80	2.19
नागालैंड	0.50	0.65	1.13
सिक्किम	0.53	0.84	1.61
त्रिपुरा	1.32	1.79	3.48
राष्ट्रीयऔसत	**2.03**	**2.50**	**4.00**

कृषि यंत्रीकरण की आवश्यकता क्यों ?

वर्तमान दशक में भारतीय कृषि धीरे-धीरे बदलाव के दौर से गुजर रही है। खाद्य एवं कृषि संगठन (FAO) के अनुसार, कृषि यंत्रीकरण कृषि यंत्रों, उपकरणों और औजारों के माध्यम से कृषि श्रम उत्पादकता में सुधार करने की प्रक्रिया है। पशुओं के रख-रखाव एवं मानव श्रम की बढ़ती लागत के कारण कृषि यंत्रीकरण पर निर्भरता दिन–ब–दिन बढ़ती जा रही है। इसके अलावा छोटी भूमि जोत के साथ-साथ अधिक जगहों पर टुकड़ों में बंटे हुये खेत खेती की लागत को बढ़ा रही है।

कृषि यंत्रीकरण कृषि कार्यों (खेत की तैयारी, बुआई, खाद डालने व कटाई) को समय से पूरा करने, श्रमिक समस्याओं को हल करने, इकाई उत्पादन लागत को कम करके उत्पादन, गुणवत्ता और लाभप्रदता बढ़ाने में मदद करता है। जिससे कृषकों को कृषि की अन्य गतिविधियों एवं घरेलू कार्यों को पूरा करने के लिए अतिरिक्त समय मिलता है। कृषि उत्पादन में सुधार के साथ-साथ परिवर्तनशील जलवायु मापदंडों के कृषि उपकरण के अधिक से अधिक प्रयोग समय की माँग है, जिसे औपचारिक रूप से कृषि सेवा केन्द्र (कस्टम हायरिंग सेंटर या सी.एच.सी.) द्वारा पूरा किया जा सकता है। उपरोक्त पृष्ठभूमि में सी.एच.सी. द्वारा देश में कृषि यंत्रीकरण के परिदृश्य को बदलने की भारी क्षमता है।

कृषि सेवा केन्द्र (सी.एच.सी.) की परिकल्पना

किराए के आधार पर व्यक्तिगत कृषि उपकरणों को आपस में साझा करने की प्रणाली भारत में एक पुरानी अवधारणा है। भारतीय गाँवों में कृषि यंत्रो को किराये पर लेना कोई असामान्य बात नहीं है। किसानों के बीच मैत्रीपूर्ण आधार पर अप्रयुक्त कृषि यंत्रों को भी साझा किया जाता है। महँगे लागत वाले कृषि उपकरण पर निवेश की शीघ्र वसूली तथा मशीनरी की निष्क्रिय क्षमता के सदुपयोग हेतु इसे किराए पर भी दिया जाता है। ऐसी परम्परा चलती/चलंत मशीनरी जैसे ट्रैक्टर, ट्रेलर, टिलर और बैलगाड़ी तक ही सीमित थी परन्तु हल, कृषि उपकरण आदि मित्रता के आधार पर उधार में देना सामान्य बात है। यह व्यवस्था पूरे देश के अलग-अलग हिस्सों में आंशिक या पूर्ण रूप में मौजूद है। व्यक्तिवादी दृष्टिकोण से खेती के लिए किराये पर कृषि उपकरण का प्रयोग संस्थागत तरीकों में बदल गई है। समान्यत: लघु/सीमांत किसान अपनी कमजोर आर्थिक स्थिति के कारण स्वयं या संस्थागत ऋण के माध्यम से कृषि मशीनरी जैसे शक्तिशाली ट्रैक्टर, थ्रेशर, कंबाइन, हार्वेस्टर और अन्य उपकरण खरीदने में असमर्थ होते हैं। इस स्थिति में सी.एच.सी.इन किसानों को कष्ट साध्य परिश्रम से छुटकारा दिलाने के इरादे से कृषि उपकरणों को सुलभ बनाने के लिए एक सुविधाजनक वन-स्टॉप समाधान है। देश में पहली बार कृषि यंत्रों की कस्टम हायरिंग 20वीं सदी में पंजाब राज्य से शुरू हुई थी। जहाँ पर कृषकों द्वारा वाष्प चलित थ्रेशर का प्रयोग किया गया। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद एग्रो इंडस्ट्रीज कॉर्पोरेशन (एआईसी) ने कृषि में यंत्रीकरण को बढ़ावा देने हेतु एक संगठित कस्टम हायरिंग इकाई शुरू किया। भारत सरकार द्वारा वर्ष 1971 में देश भर में कृषि-सेवा केन्द्र स्थापित करने की योजना शुरू करने के साथ कस्टम हायरिंग सेवाओं को और गति मिली। इन केन्द्रों का उपयोग सिंचाई परियोजनाओं की शुरुआत पर आधारित था। केन्द्र सरकार विभिन्न परियोजनाओं जैसे – कृषि मशीनीकरण पर राष्ट्रीय मिशन (एनएमएएम), नेशनल इनोवेशन इन क्लाइमेट - रेजिलिएंट एग्रीकल्चर प्रोजेक्ट (एनआईसीआरए), कृषि यंत्रीकरण पर उप-मिशन (2014-15), राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा मिशन (एनएफएसएम), राष्ट्रीय कृषि विकास योजना (आरकेवीवाई), एकीकृत बागवानी विकास मिशन (एमआईडीएच) के माध्यम से कृषि यंत्रीकरण को बढ़ावा दे रही है। इसके अलावा कई राज्य सरकारी एजेंसियां, गैर-सरकारी संगठन निजी कंपनियां और अन्य उद्यमियों के माध्यम से देश के विभिन्न हिस्सों में सी.एच.सी. संचालित किए जा रहे हैं। अब तक देश के विभिन्न राज्यों में 74,144 सी.एच.सी.की स्थापना (30 अक्टूबर, 2023 तक) की गई है, जिसमें सर्वाधिक पंजाब (11,133) के बाद क्रमश: आंध्र प्रदेश (8,471) और हरियाणा (8,253) का स्थान है। स्वामित्व के हिसाब से देश के समस्त सी.एच.सी. में सर्वाधिक निजी तौर पर कृषकों द्वारा (59.59%) संचालित (तालिका 2) किए जाते हैं। इसके बाद पैक्स / समिति (33.73%) तथा उद्यमी (6.68%) का स्थान है।

तालिका 2 : स्वामित्व के हिसाब से सी.एच.सी.

क्रमांक	स्वामित्व	संख्या	प्रतिशत
1	कृषकों द्वारा व्यक्तिगत	44,178	59.59
2	पैक्स/समिति	25,011	33.73
3	उद्यमी	4,955	6.68
	कुल	74144	100

पटसन आधारित फसल चक्र अपनाए जाने वाले देश के तीन महत्वपूर्ण राज्यों में सी.एच.सी. की स्थिति बिहार (725) में पश्चिम बंगाल (417) एवं असम (148) की तुलना में बेहतर है।

कृषि सेवा केन्द्र (सी.एच.सी.) का उद्देश्य

मूल रूप से सी.एच.सी. का उद्देश्य एक निश्चित अवधि के लिए

लघु, सीमांत और गरीब किसानों को किराया पर कृषि यंत्रों, उपकरण और उपकरणों का एक सेट उपलब्ध कराना होता है। उदाहरण के तौर पर एक एकड़ गेहूं की कटाई एवं मंडाई मानव श्रम से करने पर 7-15 दिनों का समय लगता है, जिसे कम्बाईन हार्वेस्टर द्वारा मात्र 45 मिनट में ही पूरा किया जा सकता है। विशेष रूप से कृषि कार्यों में इस्तेमाल होने वाले उन्नत कृषि उपकरण द्वारा जैसे विशिष्ट भूमि की तैयारी, बुआई, अंतर-खेती, अन्य फसल प्रबंधन, कटाई में तेजी लाकर उच्च उत्पादकता के साथ निश्चित लाभ प्रदान करती है। सी.एच.सी. में किराए पर कृषि मशीनरी व उपकरण लघु और सीमांत किसानों, महिलाओं और कृषि श्रमिकों को उपलब्ध होते हैं। खेती के प्रत्येक चरण में यंत्रीकरण के प्रयोग से किसानों की शुद्ध आय बढ़ाने में सी.एच.सी. बहुत ही फायदेमंद है। कर्नाटक के शिमोगा जिला के मक्का उत्पादक किसानों के वर्ष 2016-17 के आर्थिक विश्लेषण से सी.एच.सी. उपयोगकर्ता कृषकों को गैर-सी.एच.सी. उपयोगकर्ता की तुलना में प्रति एकड़ 24% अतिरिक्त लाभ प्राप्ति के साथ-साथ लगभग 16% उत्पादन लागत में कमी हुई। इसी तरह उनके द्वारा मानव श्रम पर निर्भरता में लगभग 16% की कमी तथा उत्पादकता में लगभग 5% की वृद्धि देखी गई (चिनप्पा एट अल, 2018)। इस तरह सी.एच.सी. किसानों को किराए पर कृषि यंत्रों को उपलब्ध कराती है, परंतु उस पर उपयोगकर्ता का कोई स्वामित्व नहीं होता है। इसके अतिरिक्त, किसानों पर इन यंत्रों के रख-रखाव और काम-काज की जिम्मेदारी भी कम होती है। उन्हें दीर्घकालिक पूंजी निवेश भी नहीं करना पड़ता है। इससे उन्हें कृषि योजना और बजट बनाना आसान हो जाता है।

सी.एच.सी. की स्थापना करने हेतु योग्यता

एक सी.एच.सी. की स्थापना किसान, प्राथमिक कृषि सहकारी समिति (PACS), किसान उत्पादक संगठन (FPO), स्वयं सहायता समूह (SHG), व्यापारी, पंजीकृत किसान समूह, उद्यमी, गैर-सरकारी संगठन (NGO) द्वारा की जा सकती है। इसके लिए केन्द्र सरकार द्वारा वित्तीय मदद का भी प्रावधान है। निजी तौर पर एक कृषक द्वारा सी.एच.सी. के स्थापना के लिए 40% तक अनुदान दिया जाता है। एक कृषक द्वारा अधिकतम 60 लाख रुपया के लागत वाले केन्द्र के लिए 24 लाख रुपया का अनुदान दिया जाता है। इसके अलावा 6-8 कृषक वाले सहकारी समूह को अधिकतम 10 लाख रुपए की लागत वाले केन्द्र को 8 लाख रुपए की सहायता दी जाती है। इसके लिए इच्छुक सभी कृषकों को अपने-अपने राज्य के कृषि विभाग के इंजीनियरिंग प्रभाग से संपर्क करना चाहिए। एक आदर्श सी.एच.सी. एक फ़सली मौसम में 10 हे./दिन और कम से कम 300 हे. क्षेत्रफल को कवर करता है। सामान्य तौर पर एक सी.एच.सी. कृषि मशीनरी की परिवहन लागत और परिवहन में लगने वाले समय की बचत हेतु 5-7 किलोमीटर के दायरे में कार्य करती है, जो 4/5 गाँवों को सेवा प्रदान करती है। किसानों के खेतों पर क्षमता निर्माण और नई प्रौद्योगिकी यंत्रों के प्रदर्शन के माध्यम से फार्म मशीनरी प्रशिक्षण और परीक्षण संस्थान, भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद (आईसीएआर), कृषि विज्ञान केन्द्र (केवीके) भी सक्रिय हैं। भारत सरकार के सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रम (पीएसयू) और राज्य कृषि विश्वविद्यालय (एसएयू), कृषि प्रौद्योगिकी प्रबंधन एजेंसी (एटीएमए), राज्य एवं अन्य केन्द्र सरकार के कृषि संस्थान / विभाग भी कृषक समुदाय के बीच प्रचार-प्रसार में लगे हुए हैं। इसी दिशा में सरकार द्वारा सहकारी समितियों के गठन और कस्टम हायरिंग दर का निर्धारण कृषकों के बीच इसके स्वीकार्यता को बढ़ा रही है। देश के अलग-अलग राज्यों में कृषकों द्वारा सी.एच.सी. के सफल उपयोग के अनेक उदाहरण मौजूद हैं। एक सर्वे के अनुसार पंजाब जैसे राज्य में लगभग 40% कृषक परिवारों के पास ही ट्रैक्टर है, शेष लोग अपनी यंत्रीकरण आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु सी.एच.सी. पर निर्भर हैं, जो इसके विशाल बाजार क्षमता को उजागर करता है। पंजाब में ही किए गये एक अध्ययन से यह स्पष्ट हुआकि सी.एच.सी. के प्रति अधिकांश उपयोगकर्ताओं का रवैया अनुकूल था। हालाँकि, विशेष रूप से महत्वपूर्ण चरणों के दौरान सी.एच.सी. पर यंत्रों की कमी देखी गई। यह सी.एच.सी. के ज्यादा विस्तार की संभावना और स्थापना के लिए स्पष्ट बाजार अवसर का संकेत देता है। औसत भूमि जोत में गिरावट और फसल सघनता में वृद्धि के कारण कस्टम हायरिंग को प्रमुखता मिली है। पंजाब में कृषकों द्वारा कम्बाइन हार्वेस्टर (20%) एवं इंटरकल्चरल हो की तुलना में सबसे अधिक डिस्क हैरो (70%) के प्रयोग की प्राथमिकता दिया गया। हरियाणा के कुरुक्षेत्र में धान उत्पादक कृषकों द्वारा सी.एच.सी. पर उपलब्ध कृषि उपकरण अपनाए जाने (अभिग्रहण) के अध्ययन में यह पाया गया कि सबसे अधिक कृषक (63.75%) अल्प से मध्यम अभिग्रहण श्रेणी के अंतर्गत थे। जबकि लगभग एक तिहाई से अधिक कृषक

(36.22%) उच्च अभिग्रहण श्रेणी के अंतर्गत थे। इसी तरह महाराष्ट्र राज्य में सबसे अधिक कृषक (42.67%) मध्यम अभिग्रहण श्रेणी के अंतर्गत थे। इसके बाद उच्च स्तर के अभिग्रहण श्रेणी (32.66%) वालों की संख्या थी। जबकि सबसे कम कृषकों की संख्या अल्प स्तर के अभिग्रहण श्रेणी (24.67%) वालों की संख्या थी। कर्नाटक राज्य के हासन जिले में कृषि सेवा केन्द्रों पर कई उन्नत कृषि यंत्रों और उपकरण के उपयोग शुल्क वाणिज्यिक एजेंसियों द्वारा निर्दिष्ट किराये की तुलना में कम थीं। कृषि क्षेत्र अपनी विशालता और विविध आवश्यकताओं के कारण सदैव उद्यमियों को आकर्षित करता रहा है। सी.एच.सी. के आगमन ने सेवा प्रावधान के साथ तकनीकी नवाचार को मिलाकर उद्यमियों के लिए नए रास्ते खोले हैं। आर्थिक रूप से किराये पर उपलब्धता के मॉडल से संचालित होने वाले सी.एच.सी. खेती के महत्वपूर्ण चरणों/अवधि के दौरान स्थिर आय को सुनिश्चित करती है। लघु एवं सीमांत किसानों को मशीनरी खरीदने के लिए अधिक पूँजी की जरूरत के बदले किराये के मॉडल के रूप में एक पसंदीदा विकल्प प्रदान करती है। इससे परिचालन लागत में उल्लेखनीय कमी आती है, जिससे कृषकों को बेहतर लाभ प्राप्त होता है। इसी कारण से इसकी लगातार माँग और राजस्व बढ़ने की संभावना भी व्यक्त की गई है। सामाजिक रूप से यह बिना किसी भेद-भाव के लघु और सीमांत किसानों को प्रौद्योगिकी तक पहुँच को लोकतांत्रिक बनाने के साथ-साथ आवश्यक उपकरण की उपलब्धता सुनिश्चित करते हुए सामाजिक समानता की दिशा में भी कार्य करती है। पर्यावरण अनुकूल इस आधुनिक कृषि पद्धति से सतत खेती को बढ़ावा जैसे- प्रिसीजन फ़ार्मिंग, जल का बेहतर उपयोग और मानव श्रम की बचत के साथ-साथ दीर्घकालिक टिकाऊ खेती को बढ़ावा मिलती है। किसानों द्वारा नये कृषि तकनीकों और यंत्रों के उपयोग से उपयोगिता एवं दक्षता को परखने के साथ-साथ तकनीकों को भविष्य में भी अपनाये रखने के निर्णय लेने में सहूलियत होती है। इस तरह खासकर लघु एवं सीमांत श्रेणी के कृषक सी.एच.सी. द्वारा उपलब्ध सुविधा का उपयोग कृषि कार्यों में कर दीर्घकालिक राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा की दिशा में अपना और भी अधिक योगदान दे सकते हैं।

ग्रामीण आजीविका में सुधार एवं सुरक्षा हेतु पटसन की उन्नत कृषि

प्रवीण कुमार एवं कुणाल प्रताप सिंह
पटसन अनुसंधान केन्द्र, कटिहार बिहार कृषि विश्वविद्यालय, सबौर

ग्रामीण आजीविका में सुधार एवं सुरक्षा के लिए पटसन की उन्नत कृषि का महत्वपूर्ण योगदान हो सकता है। कपास के बाद पटसन सबसे महत्वपूर्ण प्राकृतिक रेशा फसलों में से एक है। भारतीय अर्थव्यवस्था में पटसन को एक प्रमुख स्थान प्राप्त है। क्षेत्रफल, उत्पादन तथा उपभोग की दृष्टि से भारत विश्व में प्रथम स्थान पर है। पटसन के अन्य प्रमुख उत्पादक देश बांग्लादेश, चीन, नेपाल, ब्राजील तथा भूटान हैं। अपने उत्पादन का अधिकांश भाग निर्यात कर देने के कारण बांग्ला देश विश्व का प्रमुख पटसन निर्यातक देश है। भारत में प्रतिवर्ष पटसन एवं समवर्गीय रेशा की खेती लगभग 7.0 लाख हेक्टेयर क्षेत्रफल से ज्यादा में की जाती है, जिससे लगभग 9.17 मिलियन बेल पटसन का उत्पादन होता है। भारत में पटसन की औसत उत्पादकता 26.06 क्विंटल/हेक्टेयर है। उत्पादन तथा उत्पादकता की दृष्टि से पश्चिम बंगाल भारत का अग्रणी राज्य है, जबकि असम दूसरे तथा बिहार तीसरे स्थान पर हैं। पटसन बिहार के कोशी क्षेत्र में मुख्य रूप से उगाया जाने वाला एक जैव-निम्नी कारक रेशा फसल हैं। बिहार में पटसन का उत्पादन किशनगंज, कटिहार, पूर्णिया, सहरसा, सुपौल, मधेपुरा तथा अररिया जैसे कुल सात जिलों में किया जाता है। इन क्षेत्रों में पटसन की खेती करने वाले ज्यादातर किसान छोटे अथवा सीमांत जोत वाले है। बिहार एवं पश्चिम बंगाल के प्रमुख भागों में पटसन की खेती बृहद् पैमाने पर किए जाते हैं।

पटसन एक वर्षा सिंचित फसल है, जिसकी बुवाई मार्च से लेकर मई महीने तक की जाती है। पटसन की खेती के लिए जलोढ मिट्टी तथा भारी वर्षा की आवश्यकता होती है। पटसन के बढ़ावार के लिए गर्म तथा गीली जलवायु उपयुक्त है। पटसन की फसल के लिए 20 से 40 डिग्री सेल्यिस तापमान और गर्म व उच्च आर्द्र जलवायु उपयुक्त माना जाता है। पटसन मुख्यतः दो प्रकार के होते हैं, जिनका वानस्पतिक नाम *कोर्कोरस कैप्सुलरिस* (*Corchours capsularis*) तथा *कोर्कोरस ओलिटोरिअस* (*C. oliorious*), जिसे क्रमशः सादा पटसन व तोषा पटसन के नाम से जाना जाता है। पटसन की उन्नत प्रजातियों - पटसन की उच्च प्रजाति का चुनाव तथा बीज उपचार व समयानुसार बुआई अत्यावश्यक है। नवीनतम पटसन प्रजाति व उनके बुआई के सटीक समय का उल्लेख नीचे किया गया है :-

पटसन प्रजाति	प्रचलित नाम	प्रमुख गुण
जे.आर.ओ. 204	सुरेन	उच्च पैदावार क्षमता, रोगों व कीटाणुओं से प्रतिरोध क्षमता, मार्च के शुरूआत में बुआई सम्भव।
सी.ओ. 58	सौरभ	उच्च गुणवता वाले रेशा, प्रमुख कीटाणुओ व रोग प्रतिरोधी क्षमता, बुआई का समय शुरूआती मार्च।
जी.बी.ओ. 2003-4	ईरा	मार्च के अंत या अप्रैल तक बुआई, तना गलन तथा एंथाक्रोज प्रतिरोधी।
एस. 19	सुबाला	पुष्पण प्रतिरोधी प्रतिकुल जलवायु परिस्थितियों में भी उपयुक्त, महीन रेशा।
जे.आर.ओ. 8432	शक्ति	अंत मार्च से अप्रैल अंत तक बुआई, उच्च फलनशील।
जे.आर.ओ 524	नवीन	सर्वाधिक लोकप्रिय प्रजाति, अप्रैल में बुआई के बावजुद पुष्पण प्रतिरोधी, बुआई मध्य मार्च से अप्रैल तक

बुआई - पटसन की बुआई पंक्तिबद्ध करना चाहिए। बहुकतारिय सीड ड्रील मशीन द्वारा पंक्तियों में बुआई करने के लिए लगभग 3-4 कि.ग्रा./हे. बीज की आवश्यकता होती हैं। क्रिजैफ (CRIJAF) द्वारा विकसित बहुकतारिय सीड ड्रील मशीन ने प्रदर्शन प्रक्षेत्रों में खेती के लागत में कमी तथा निराई-गुड़ाई एवं अन्य शस्य क्रियाओं में सुविधा प्रदान किया है। छिड़कवा विधि से बोये गये खेत में 6 - 8 कि.ग्रा./हे. बीज की आवश्यकता होती है। नेल वीडर का उपयोग बुआई के 4-5 दिन बाद उगते हुए खरपतबार को नष्ट करने के साथ ही मिट्टी को भुरभुरा बनाने में इसका उपयोग किया जा सकता है। इससे पंक्ति बनाने में भी सुविधा होती है तथा साथ ही अनावश्यक

पौधे व खर-पतवार को भी बाहर निकालने में मदद होती है। इससे पटसन के खेतों में विरलीकरण भी हो जाता है।

उर्वरकों का अनुप्रयोग - इसका प्रयोग मिट्टी में उपस्थित पोषक तत्वों के निर्धारण के बाद किया जाना चाहिए। उर्वरकों की दक्षता बढ़ाने के लिए नत्रजन उर्वरक को 2 से 3 भागों में प्रयोग करना चाहिए। समान्यतः यूरिया 140 कि.ग्रा. (तीन बराबर मात्रा में; बुआई के समय, बुआई के 25-30 दिन एवं बुआई के 40-50 दिनों बाद) डाई अमोनियम फास्फेट (डी.ए.पी.) 87 कि.ग्रा. एवं पोटाश (एम.ओ.पी.) 66 कि.ग्रा. का प्रयोग किया जाता है। पटसन की फसल में यदि नाइट्रोजन फॉस्फोरस पोटाश की अनुशंसित मात्रा (80:40:40) के साथ 30 किलोग्राम/हेक्टेयर की दर से सल्फर का प्रयोग किया जाय तो इसमें सूखा से लड़ने की क्षमता बढ़ जाती है। साथ ही साथ रेशा उत्पादन में 15 से 20 प्रतिशत तक की वृद्धि होती है।

खरपतवार प्रबंधन

- खर-पतवार नियंत्रण करना फसल के लिए बहुत ही अनिवार्य एवं बहुत महत्वपूर्ण है; अन्यथा उपज में काफी क्षति पहुँच सकता है।
- खर-पतवार से फसल को 30-50 प्रतिशत तक नुकसान पहुँचा सकता है।

निकाई

- व्हील-हो (Wheel-Hoe) द्वारा करना लाभप्रद रहता है।
- नेल-वीडर (Nail-Weeder) द्वारा बुआई के पाँचवे दिन करना लाभप्रद रहता है।

खरपतवार का प्रकार	शाकनाशी	मात्रा	प्रयोग करने का समय
घास एवं चौडी पत्ती	ब्यूटाक्लोर (अंकुरण पूर्व) व प्रीटलाक्लोर 50 ई.सी.	3 मि.ली./ ली. पानी में	बुआई के 24 से 48 घंटा के अंदर
घास वाली	क्विजालोफॉप इथाइल	2-2.5 मि.ली./ली. पानी में	बुआई के 15-20 दिन बाद

रसायनिक प्रबंधन : खरपतवार नियंत्रण बहुत ही महत्वपूर्ण है अन्यथा उपज में काफी क्षति पहुँच सकती है। शाकनाशी खरपतवार प्रबंधन मानवीय श्रम की तुलना में सस्ती एवं प्रभावकारी होता है।

प्रमुख रोग तथा उनका प्रबंधन

1. तना सड़न/ जड़ सडन

लक्षण : यह रोग साधारणतः तने के आधार से जडों की ओर फैलता है एवं पादप को जल्दी ही मृत कर देता है। ग्रसित पौधा आद्र गलन रोग तथा जड़ गलन के लक्षण को दर्शाता है। व्यस्क पादप में पत्तियों तथा तनों में काले रंग के धब्बे के घेरे हो जाते है, जिससे तने की छाल के रेशे सड़ाने के दौरान टूट जाते है। पूरे फसल की अवधि में जब गर्मी व आर्द्रता बढ़ जाता है, तब यह रोग प्रकट होता है।

समेकित रोकथाम एवं उपचार (जड़ सड़न एवं तना सड़न)

- अम्लीय मृदा में इस रोग का फैलाव अधिक होता है। इसलिए इसमें चूना 2 - 4 टन प्रति हेक्टर की दर से बुवाई के पहले डालकर मृदा के पी.एच. का प्रबंधन करना चाहिए।
- बुवाई हेतु पंक्ति से पंक्ति की दूरी 25 - 30 से.मी. तथा पौधा से पौधा की दूरी 5-7 से.मी. रखनी चहिए ।
- पटसन-धान-गेहूँ या पटसन-धान-सरसों के फसल चक्र को अपनाना चाहिए।
- बीज का उपचार बुवाई से पहले कारबेंनडाजिम (Carbendazim) की मात्रा 2.0 ग्रा. प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से करना चाहिए ।
- Trichoderma viridae का 10 ग्राम प्रति किलो ग्राम बीज से बीज उपचार करना चहिए।
- रोग रोधी किस्मों के बीज जैसे JRO 204, JRO 66, JRO 8432 की बुवाई करनी चाहिए ।
- उचित उर्वरक एवं फार्म खाद का प्रबंधन करके रोग को कम किया जा सकता है।

- समय पर निराई एवं गुड़ाई का उचित प्रबंधन करना चाहिए।
- कारबेंनडाजिम (Carbendazim) @2 ग्राम / लिटर या टेबुकोनाजोल (Tebuconazole) का पर्णीय छीड़काव जुलाई व अगस्त महीने में करना चाहिए।

प्रमुख कीट तथा उनका प्रबंधन

1.बिहार रोमिल सूड़ी (Bihar Hairy Caterpillar)

क्षति के लक्षण : यह कीट 45 दिन से लेकर कटाई तक नुकसान दायक होता है। इसके लार्वा झूंड में रहते हैं तथा पत्तियों के क्लोरोफिल को चट कर जाते हैं। बाद में पूरे खेत में फैल जाते हैं, जिससे पुरानी पत्तियाँ पहले झड़ जाती है। साइपरमेथ्रीन 100 ग्रा. ए.आई./हे. या लैम्डासाय हेलोथ्रीन 5 ई.सी. का पर्ण छिड़काव ज्यादा कारगर होता है।

2. पटसन अर्धकुण्डलक (Semilooper)

क्षति के लक्षण : पत्तियों में आरी के समान कटे हुए निशान दिखाई देते हैं। क्षति की शुरूआत बंद पत्तियों या कलियों से होती है, जो इसके प्रति संवेदनशाली होते हैं ।

प्रबंधन : नीम का तेल (4 मि.ली./ली. पानी) का प्रयोग करना चाहिए या लैम्डासायहैलोथ्रीन 5 ई.सी. (1 या 1.5 मि.ली./ली. पानी) का पर्णीय छिड़काव ज्यादा कारगर होता है।

3. पीली मकड़ी (Yellow mite)

क्षति के लक्षण : नयी पत्तियों के उपरी सतह अंदर के तरफ मुड़कर नौकाकार आकृति में परिवर्तित हो जाते हैं। पत्तियाँ अपने पूर्व आकार को प्राप्त नहीं कर पाती है। वे ताम्र-भूरे रंग के होकर समय से पूर्व झड़ जाती हैं। पौधे की लंबवत कायिक वृद्धि रूक जाती है और पर्णसंशिया छोटी हो जाती है।

प्रबंधन : फेनाजाक्वीन 10 ई.सी. 1.5 मि.ली./लीटर पानी में मिला कर पत्तियों के उपर 10 दिनों के अंतराल पर छिड़काव करना चाहिए।

कटाई : पटसन की कटाई का उचित समय बुआई के 110 से 120 दिनों के बाद होता है।

पटसन सड़न : कटी हुई फसलों को बंडल बनाकर उन्हें पानी में डालकर सड़न हेतु छोड़ देना चाहिए। सड़न की प्रक्रिया सबसे अच्छी तरह से धीरे से बहते हुए पानी में होती है, लेकिन इसकी उपलभता बहुत कम हाती है। उन्नत सड़न तकनीक विधि को अपनाने से सड़न अवधि भी कम हो जाती है, साथ ही रेशे की गुणवत्ता में भी 1-2 ग्रेड का सुधार हो जाता है। इससे

आमदनी में भी कम से कम 6000-8000 रुपये प्रति हे. की वृद्धि हो जाती है।

उन्नत सडऩ तकनीक : पारंपरिक विधि से पटसन को सड़ाने में हम क्रिजैफ द्वारा विकसित सूक्ष्मजीवी सड़न तालाब में प्रयोग करते हैं, जहाँ समुचित पानी की व्यवस्था हो। सुक्ष्मजीवी मिश्रण पटसन के बंडल को 14-16 दिनों के अंदर पूरी तरह सड़ा देता है तथा साथ ही इससे 1-2 ग्रेड अच्छे रेशे की प्राप्ति होती है।

इन–सीटू सड़न तकनीक : इसके लिए एक गोलाकार गड्ढ़ा खोदते है, जिसका सतही व्यास 7.0 मीटर, उपरी व्यास 10.0 मीटर तथा गहराई एक मीटर हो। इसमें करीब 0.5 एकड का कटा हुआ पटसन सड़ाया जा सकता है। पूरे गड्ढ़े में एक मोटे पॉलिथीन को बिछा देते है। इसके ऊपर धान के पुआल को चारो ओर बिछा देते हैं। फिर इसके बाद चक्राचार विधि से पटसन बंडल को डालकर इसमें उस सूक्ष्मजीवी मिश्रण का छिडकाव कर देते हैं (10-12 कि.ग्रा./एकड़)। फिर पूरे गडढे को पानी से भर देते है। इसके ऊपर पुआल, जलीय खर-पतवार अथवा मिट्टी भरा सीमेंट का बोरा डाल देते हैं। ऐसी परिस्थिति में पानी की मात्रा पारंपारिक विधि की तुलना में बहुत कम (करीब 5 भाग कम) लगता है। यह विधि कम वर्षा (सडन के समय) के समय में अधिक कारगर होता हैं। करीब 14-15 दिनों में सड़न की प्रक्रिया पूरी हो जाती है तथा इसमें 1-2 ग्रेड अच्छे रेशे की प्राप्ति होती है। इसमें रेशे को निष्कर्षण व धोने का काम गडढें के उपरी किनारे पर ही बैठ कर किया जाता है। साथ ही रेशे को सुखाने के लिए मेड़ पर डाल देते है।

सूक्ष्मजीवी मिश्रण (क्रिजैफ सोना) का लाभ

- सड़न प्रक्रिया की अवधि 6-7 दिनों तक कम हो जाती है।
- पटसन की उत्पादकता में 8-10% तक वृद्धि होती है।
- इस विधि से पारंपरिक विधि की तुलना में कम से कम 1 ग्रेड अच्छे रेशे की प्राप्ति होती है।
- आमदनी में रु.6000-8000 प्रति हे. तक लाभ होता है।
- इस सूक्ष्मजीवी मिश्रण का उपयोग में खर्च कम आता है।

जैविक (सूक्ष्म-जीवाणु) उर्वरकों की आवश्यकता एवं उनका अनुप्रयोग

दीपांकर घोराई, सुब्रत सरकार, शेख मोहम्मद अज़ीज़ुर रहमान, सुब्रत सत्पथी एवं गौरांग कर

भाकृअनुप – केन्द्रीय पटसन एवं समवर्गीय रेशा अनुसंधान संस्थान, बैरकपुर, कोलकाता -700121

भूमिका

रसायनीक उर्वरकों के अविवेकपूर्ण उपयोग से हमारी फसलों की गुणवत्ता लगातार खराब हो रही है। पौष्टिक खाद्य की वैश्विक मांग और उनकी दीर्घकालिक स्थिरता को ध्यान में रखते हुए जैविक खेती एक महत्वपूर्ण क्षेत्र के रूप में उभरी है। यद्यपि खाद्य मांग को पूरा करने के लिए कृषि में रसायनों का उपयोग आवश्यक है, फिर भी कुछ ऐसे क्षेत्र हैं जहां स्थानीय जैविक फसलों की मांग की पूर्ति हेतु प्राथमिकता के आधार पर जैविक खेती की जा सकती है। जीवाणु (माइक्रोबियल) उर्वरक जैविक कृषि पद्धतियों का एक अभिन्न अंग हैं। जीवाणु उर्वरक विभिन्न प्रकार के जैसे नाइट्रोजन-फिक्सिंग, फॉस्फेट-फिक्सिंग या सेल्युलोलाइटिक हो सकते हैं। इन्हें गीली मिट्टी में या खाद बनाने के लिए प्रयोग में लाया जाता है। सूक्ष्मजीवी उर्वरक मिट्टी में नाइट्रोजन को स्थिरीकरण द्वारा मिट्टी के स्वास्थ्य में सुधार करते हैं। यह स्थिरीकरण जड़ों के माध्यम से या जड़ों के बिना भी हो सकता है। वास्तव में, जैविक प्रणालियों में पोषक तत्वों के अवशोषण के लिए जीवाणु उर्वरकों का उपयोग प्रासंगिक हो गया है। कृत्रिम रासायनिक उर्वरकों के अविवेकपूर्ण प्रयोग से मृदा प्रदूषण, जल प्रदूषण, सूक्ष्मजीवों और मित्रवत कीट का नुकसान, फसल रोगों में वृद्धि और मिट्टी की उर्वरता में कमी आती है।

अगर हम मिट्टी में मौजूद पोषक तत्वों पर नजर डालें तो पता चलेगा कि वर्ष 2030 तक 350 मिलियन टन खाद्यान्न पैदा करने के लिए लगभग तीस मिलियन टन पोषक तत्वों की जरूरत होगी, जबकि मिट्टी में लगभग विकल्प के तौर पर करीब 8 मिलियन टन जैव उर्वरकों के प्रयोग से इस कमी को काफी हद तक पूरा किया जा सकता है।

जीवाणु उर्वरक क्या है ?

जीवाणु उर्वरक लाभकारी जीवाणुओं का एक मिश्रण है, जिसे बीज, जड़ों या मिट्टी में प्रयोग किया जाता है। यह जैविक गतिविधि के माध्यम से पौधों के विकास को बढ़ावा देने, मिट्टी के स्वास्थ्य को बनाए रखने के साथ-साथ पौधों को पोषक तत्व प्रदान करता है।

जीवाणु उर्वरक का लाभ

1. मिट्टी की उर्वरता को बढ़ाता है।
2. हवा में मौजूद नाइट्रोजन को बाँधकर मिट्टी में नाइट्रोजन की आपूर्ति बढ़ाता है।
3. पौधों को आवश्यक फॉस्फेट आपूर्ति के लिए घुलनशील फॉस्फेट की उपस्थित बढ़ाता है।
4. जैविक पदार्थ को सड़ा कर जैविक खाद बनाता है।
5. हार्मोन के उत्पादन द्वारा पौधे के विकास में सहायता करता है।
6. पर्यावरण अनुकूल होने से पर्यावरण को कोई नुकसान नहीं होता है।
7. पोषक तत्व मिट्टी में घुलकर या अवशोषित होकर उनकी उर्वरता बढ़ाते हैं।
8. अपेक्षाकृत कम कीमत के कारण खेती की लागत कम हो जाती है।

जीवाणु उर्वरकों के प्रकार

नाइट्रोजन के लिए फलीदार फसलों हेतु राइजोबियम, गैर-फलीदार फसलों के लिए एज़ोटोबैक्टर और एज़ोस्पिरिलम, गन्ने के लिए एसिटोबैक्टर तथा नीचली भूमि के धान के लिए नील-हरित शैवाल और एजोला उपयुक्त होते हैं।

राइजोबियम

- वैज्ञानिक फ्रैंक ने 1889 में राइजोबियम नाम दिया।
- नाइट्रोजन स्थिरीकरण की दृष्टि से ये सर्वाधिक प्रभावी हैं।
- यह मिट्टी में रहता है और हवा से मुक्त नाइट्रोजन स्थिरीकरण करता है।
- इनकी सात प्रजातियाँ हैं और वे विशेष पौधों पर विशेष प्रजातियों में सक्रिय हैं, जो निम्न तालिका में हैं :

तलिका संख्या 01 :

राइजोबियम प्रजातियाँ	जो फसलों पर सक्रिय हैं
राइजोबियम लेग्यूमसेरम	मटर, खेसारी, मसूर
राइजोबियम त्रिफोली	बर्सिम
राइजोबियम फ़ैसिओली	राजमा
राइजोबियम ल्यूपिनी	ल्यूपिनस
राइजोबियम जैपोनिकम	सोयाबीन
राइजोबियम मेलिलोटी	बरबटी, मूंग, कलाई, अरहर

- धीमी गति से बढ़ने वाले राइजोवियम को ब्रैडीराइजोबियम कहा जाता है।

जीवाणु उर्वरक द्वारा बीज उपचार की विधि

राइजोबियम

राइजोबियम द्वारा बीज का उपचार सबसे प्रभावी तरीका है। एक हेक्टेयर भूमि में दलहनी फसल बोने के लिए एक किलोग्राम राइजोबियम कल्चर की आवश्यकता होती है। सबसे पहले बीजों पर 10 प्रतिशत गुड़ का जल छिड़क कर मिला देना चाहिए जो गोंद का काम करता है। फिर राइजोबियम कल्चर को बीज के साथ अच्छी प्रकार मिलाकर लेना चाहिए। इसके बाद उपचारित बीजों को छाया में सुखाने के बाद बोया जाता है।

एजोटोबैक्टर

यह एक मुक्त-जीवि परजीवी जीवाणु है। यह क्षारीय या उदासीन मिट्टी में पाया जाता है। एज़ोटोबैक्टर क्रुकोकोकस भारत की सभी खेती योग्य भूमि में पाया जाता है। पर्यावरण से मुक्त नाइट्रोजन को स्थिर करने के अलावा यह विभिन्न वृद्धि हार्मोनों जैसे ऑक्सिन, जिबरेलिन का स्राव करता है। इनमें से कुछ प्रजातियों में फफूंदनाशी क्रिया-कलाप भी होती है। इसकी प्रभावशीलता चावल, मक्का, कपास, जौ, सब्जियों, विभिन्न औद्यानिक फसलों में देखी गई है। इन जीवाणुओं के किर्याशीलता के लिए मिट्टी में पर्याप्त मात्रा में जैविक पदार्थ की आवश्यकता होती है। अधिक जैविक पदार्थ की उपस्थिति में नाइट्रोजन स्थिरीकरण क्षमता बढ़ जाती है।

इस जीवाणु के उपचार से प्याज, बैंगन, टमाटर या पत्तागोभी जैसी फसलों के उपज में वृद्धि देखी गई है। इस से बीज या पौध उपचार करने से आवश्यक नाइट्रोजन उर्वरक की मात्रा को 20-30 प्रतिशत तक कम किया जा सकता है।

एज़ोस्पिरिलम

यह स्वतंत्र रूप से मिट्टी में रहने वाला एक अजैविक बैक्टीरिया हैं जो गाँठ नहीं बना सकते। लेकिन इसे खास तरीकों से पौधों की जड़ों से जोड़ा जा सकता है। इसका उपयोग मक्का, ज्वार, धान आदि फसलों के बीज या अंकुर उपचार के लिए किया जाता है।

यह अन्य जीवाणुओं के साथ सह-अस्तित्व में रहता हैं। यह 20 से 40 कि.ग्रा./हेक्टेयर तक नाइट्रोजन का स्थिरीकरण कर सकता है। यह पौधों की शारीरिक वृद्धि में सहायता करता है। इसके प्रयोग से 20 से 25 प्रतिशत तक नाइट्रोजन की बचत होती है।

एसीटोबैक्टर

एसीटोबैक्टर डायज़ोट्रॉफ़िकस गन्ने में प्रभावी एक नाइट्रोजन-

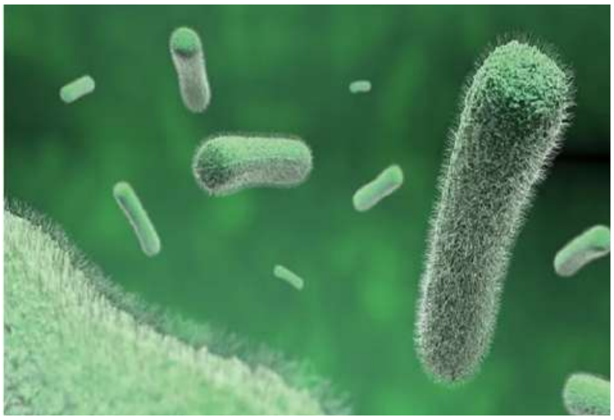

चित्र 1: जड़ में राइजोबियम और गांठें

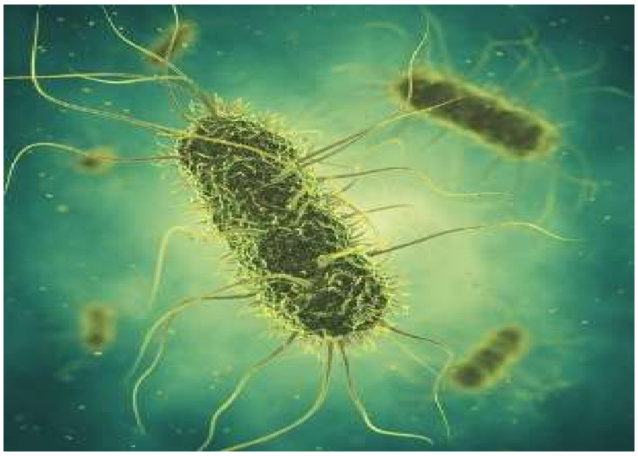

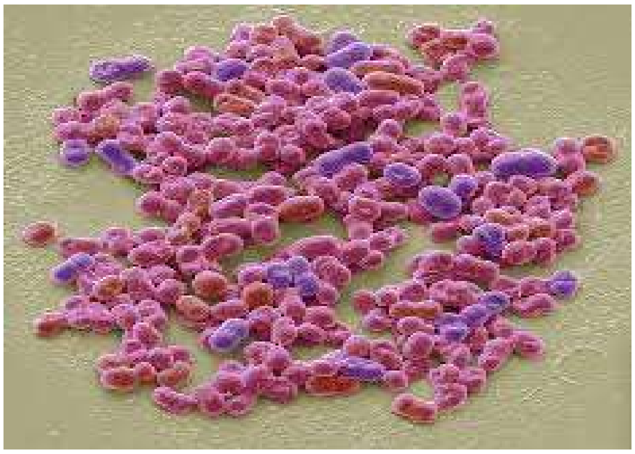

चित्र 2 : एज़ोटोबैक्टर क्रोकोकम

फिक्सिंग जीवाणु है। यह अम्लता एवं लवणता को भी सहन करने के साथ-साथ प्रति हेक्टेयर 20 कि.ग्रा. तक नाइट्रोजन स्थिर करता है। एसिटोबैक्टर के प्रयोग में ऑक्सिन और एंटीबायोटिक जैसे पदार्थों की उपस्थिति देखी गई है।

नील-हरित शैवाल

नील-हरित शैवाल की सबसे महत्वपूर्ण दो प्रजातियाँ, एनाबिना और नोस्टोक हैं। ये प्रति हेक्टेयर 15 से 45 कि.ग्रा. नाइट्रोजन स्थिर करते हैं। इसके समुचित बढ़वार के लिए मिट्टी में 2 से 10 से.मी. जल की आवश्यकता होती है। इनकी वृद्धि के लिए 25 से 45^{0}C तापमान आदर्श मानी गई है। तेज़ धूप में इनकी वृद्धि दर अधिक होती है। लेकिन बादल और बरसात के मौसम में इनकी वृद्धि अच्छी नहीं होती है। यदि मिट्टी का पीएच 7-8 के बीच हो तो उनकी वृद्धि सबसे अच्छी होती है।

अजोला

अजोला एक छोटा शैवाल है जो तालाबों, पोखरों तथा धान के खेतों में उगता है। इसका प्रयोग भारत, थाईलैंड, कोरिया, फिलीपींस, ब्राजील आदि देशों में धान उत्पादन में किया जाता है। वे एनाबिना एजोली नामक नील-हरित शैवाल के साथ मिलकर हवा से नाइट्रोजन का संश्लेषण करते हैं। इसके अलावा, एजोला के विघटन से मिट्टी में पोटेशियम, फास्फोरस, जिंक और लोहा जैसे पोषक तत्व मिलते हैं। अजोला प्रति हेक्टेयर 30 से 40 कि.ग्रा. नाइट्रोजन की आपूर्ति करने में सक्षम होता है। इसकी सामान्य वृद्धि 20 से 30^{0}C के तापमान पर होती है। इस शैवाल की वृद्धि के लिए बादल युक्त आकाश एक आदर्श स्थिति है। इसके सामान्य वृद्धि के लिए 5.5 - 7 पीएच वाले मिट्टी को प्राथमिकता दी जाती है। अजोला नर्सरी के लिए छायादार जगह उपयुक्त होती है। धान की रोपाई के समय प्रति बीघे भूमि में 10-20 कि.ग्रा. अजोला के साथ 10 कि.ग्रा. सिंगल सुपर फास्फेट प्रयोग करना चाहिए। बुआई के एक महीने के भीतर अजोला जमीन को पूरी तरह से ढ़ँक लेता है। फिर मेंड के एक भाग में 1 फुट काटकर जाली लगा देनी चाहिए।

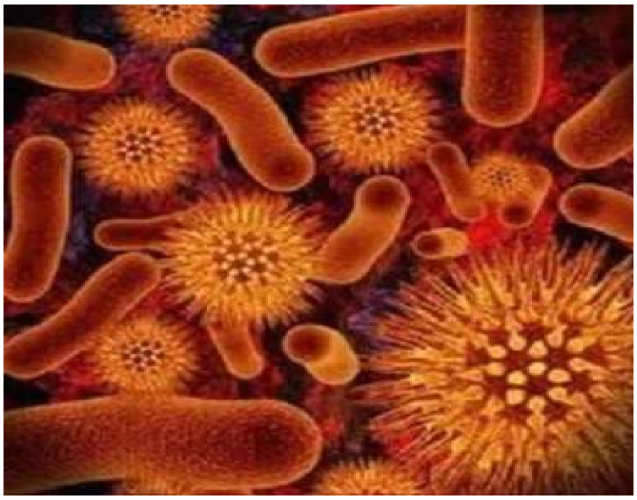

चित्र 3: एज़ोस्पिरिलम

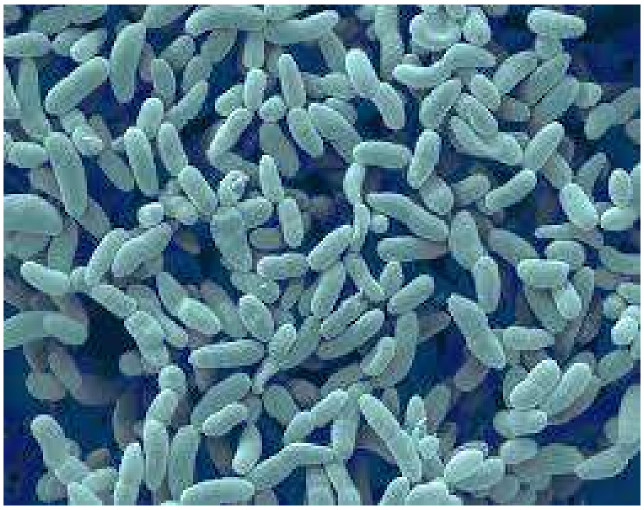

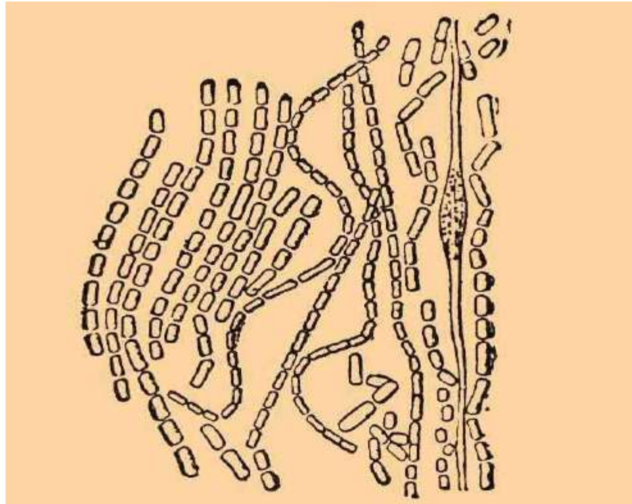

चित्र 4: एसीटोबैक्टर एसीटी

ऐसा करने से निराई के समय मिट्टी का जल निकल कर अजोला मिट्टी में मिल जायेगा।

वेसिकुलर अर्बुस्कुलर माइकोराइजा (VAM)

वैज्ञानिक फ्रैंक ने सबसे पहले इसका नाम 1885 ई. में रखा था। फफूंद और पौधों की जड़ों के बीच संबंध को माइकोराइजा कहा जाता है । वेसिकुलर अर्बुस्कुलर माइकोराइजा में वेसिकल्स और अर्बुस्क्यूल्स नामक विशेष अंग होते हैं,जिसमें फफूंद पोषक तत्वों को संग्रहित करता है । अर्बुस्क्यूल्स वेसिकल्स के माध्यम से पौधे तक अन्य पोषक तत्वों को पहुंचाने में भी मदद करते हैं। यह फॉस्फोरस, जिंक और सल्फर को अवशोषण करने में मदद करता है। साथ ही पोटेशियम, आयरन, एल्युमिनियम, कॉपर, मैग्नीशियम जैसे तत्व भी इन्हें जड़ों तक पहुंचाता हैं। यह मिट्टी में फास्फोरस को घुलने में मदद करता है, जो मिट्टी के कोलाइड्समें बंधा होता है। यह पौधे की जड़ों के बाहरी आवरण को भेदकर जड़ के अंदर पहुँच जाता है औरपौधे की जड़ से चिपक जाता है तथा विभिन्न पोषक तत्वों को पौधों को उपलब्ध कराता है।

पौधों की वृद्धि को बढ़ावा देने वाले राइजोबैक्टीरिया

इस समूह में स्यूडोमोनास और बैसिलस प्रजातियाँ आती हैं, जिनकी मदद से एंटीबायोटिक्स और फाइटोहोर्मोन तैयार किए जाते हैं। इस गोत्र के बैक्टीरिया पौधों के जड़ या राइजोस्फीयर क्षेत्र में रहते हैं तथा निम्न तरीकों से मदद करते हैं :

1. रोग को रोकते हैं (जिन्हें बायो प्रोटेक्टेंट कहा जाता है)
2. पोषक तत्वों (उर्वरक) का उपलबद्धता में बृद्धि
3. फाइटोहोर्मोन (बायोस्टिमुलेंट) का उत्पादन करना।

जीवाणु उर्वरक उर्वरक के प्रयोग के नियम

बीज उपचार

यह सबसे अधिक प्रचलित तरीका है। इस विधि में जीवाणु

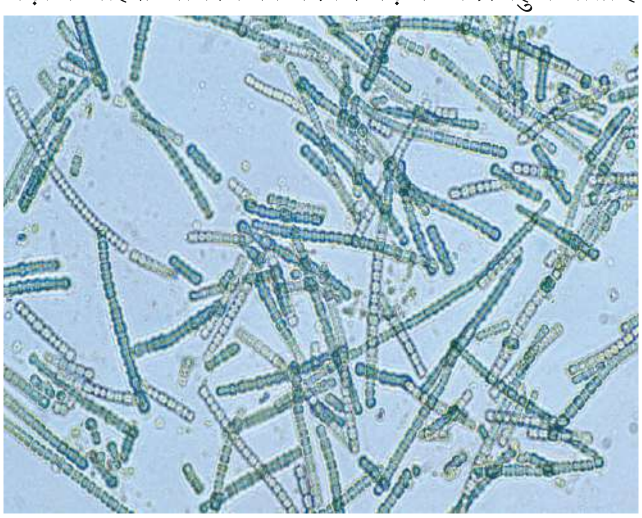

चित्र 5: नील-हरित शैवाल और नील-हरित शैवाल से प्रभावित तालाब

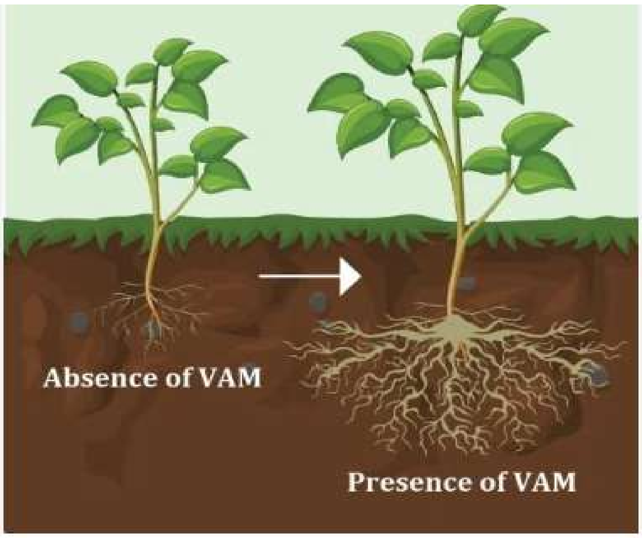

चित्र 6: वेसिकुलर आर्बुस्कुलर माइकोराइजा और जड़ वृद्धि पर इसका प्रभाव

उर्वरक को पहले गुड़ के 10% जलीय घोल के साथ मिलाया जाता है। बीजों को सीमेंट के फर्श पर फैलाया जाता है। इस मिश्रण को बीजों पर समान रूप से अच्छी तरह मिला दिया जाता है। इसके बाद उपचारित बीजों को रातभर सुखाया जाता हैं। मोटे तौर पर एक हेक्टेयर भूमि के लिए 100 ग्राम जीवाणु उर्वरक की मात्रा की आवश्यकता होती है।

मृदा उपचार

यह विधि गन्ने और फलों के पेड़ों पर लागू होती है। फलों की पौध की बुआई के समय 20 ग्रा. जीवाणु उर्वरक को खाद में मिलाकर जड़ पर लगाना चाहिए । जीवाणु उर्वरकों को भी मिट्टी में डाला जा सकता है, लेकिन इस तरह करीब 4 से 10 गुना अधिक उर्वरक की आवश्यकता होती है। फैलाने से पहले, उर्वरक को खाद के साथ मिलाया जाना चाहिए और 24 घंटे तक धूप में छोड़ देना चाहिए, जिससे उसकी नमी खत्म हो जाए।

अंकुर उपचार

यह एज़ोटोबैक्टर और एज़ोस्पिरिलम जैसे जीवाणुओं के प्रयोग के लिए किया जाता है। इसके लिए 4-5 कि.ग्रा. एज़ोटोबैक्टर को 50 लीटर जल में घोलना चाहिए। एक एकड़ भूमि के लिए आवश्यक पौध को इस मिश्रण में डुबोकर आधा घंटा के लिए छोड़ देना चाहिए। आलू के मामले में, आलू के कंदों को इस मिश्रण में डुबा कर फिर भूमि में बुवाई करनी चाहिए।

जीवाणु उर्वरकों का बेहतर उपयोग हेतु ध्यान रखने योग्य कुछ निम्न बातें :-

1. विभिन्न फसलों के लिए अलग-अलग प्रजातियाँ की आवश्यकता।
2. पैकेट पर छपे हुए वैधता अवधि की जाँच कर लेनी चाहिए तथा समाप्ति से पूर्व ही इसका उपयोग करना चाहिए।
3. सोयाबीन की उच्च नाइट्रेट सहनशील प्रजातियों के लिए राइजोबियम प्रजाति प्रभावी नहीं होती है।
4. खरीद के कुछ दिनों के भीतर उपयोग किया जाना चाहिए। इस पैकेट को धूप से बचाएं।

पटसन उत्पादकता एवं गुणवत्ता वृद्धि में जल-निकास प्रबंधन का महत्व

रंजन कुमार नायक, गौरांग कर, सुनीति कुमार झा, ष्म्ना ए. एवं संजय साहा

भाकृअनुप – केन्द्रीय पटसन एवं समवर्गीय रेशा अनुसंधान संस्थान, बैरकपुर, कोलकाता -700121

परिचय

पटसन की खेती में सिंचाई, जल का उपयोग और खेत से अतिरिक्त/जमे हुए जल को निकालना जल प्रबंधन में शामिल होते हैं। उचित सिंचाई से उपज में वृद्धि, फसल की गुणवत्ता में सुधार और रोपण में फायदा होता है। दूसरी ओर अतिरिक्त/जमे हुए जल, चाहे स्रोत कोई भी हो, को खेत से बाहर निकालना अनिवार्य होता है। पटसन के खेतों में उचित जल निकासी के अभाव में पौधों के बढ़वार में कमी, बीमारियों और कीटों के प्रकोप में वृद्धि, अपर्याप्त जड़ प्रणाली और लाभकारी सूक्ष्मजीवों की उपस्थिति में कमी जैसी समस्याएं उत्पन्न होती हैं।

खेत की सतह पर या सतह के नीचे जमे हुए जल को निकालना जल-निकासी कहलाता है जो पौधों की वृद्धि के लिए मिट्टी में अनुकूल स्थिति प्रदान करता है। जल-निकासी जड़ प्रणाली की श्वसन में मदद करती है। मिट्टी में हवा की उपस्थिति मिट्टी में मौजूद जीवाणुओं की वृद्धि के लिए आवश्यक है क्योंकि, यह मिट्टी में उपस्थित कार्बनिक पदार्थ और उर्वरक को पोषक तत्व के रूप में परिवर्तित कर पौधों को उपलब्ध कराती है। जल-निकासी से मिट्टी की संरचना तथा इसके अवशोषण क्षमता में भी सुधार होता है, जिससे मिट्टी का तापमान भी नियंत्रित रहता है। जल-निकासी, लवणों के निक्षालन की प्रक्रिया को तेज करती है और मिट्टी में लवण के संचयन को रोकती है। इस तरह जल-निकासी न केवल मिट्टी की उत्पादकता में सुधार करती है बल्कि पौधों के लिए एक स्वस्थ पारिस्थितिकी को भी प्रदान करती है।

भारत में पटसन उत्पादित क्षेत्र लगभग 80% वर्षा पर आधारित है। देश के कुल नौ पटसन उत्पादक क्षेत्रों में से लगभग छह क्षेत्रों में जल-जमाव की समस्या है। आमतौर पर पटसन की फसल मार्च-अप्रैल के महीने में बोयी जाती है और जुलाई-अगस्त में काटी जाती है। वर्षा की अनिश्चितता और असमान वितरण के कारण फसल विकास के शुरुआती चरण में पटसन की फसल को जल की कमी का सामना करना पड़ता है। अक्सर नॉरवेस्टर (Norwester) और प्री-मानसून (pre-monsoon) वर्षा (मई से जून) की शुरुआती और भारी बारिश के कारण, मैदानी और निचली भूमि में जल-निकासी नहीं होने के कारण पटसन के खेत में जल जमाव हो जाता है।

चित्र संख्या 01 : पटसन के खेतों से अतरिक्त जल-निकासी की व्यवस्था

चित्र संख्या 02 : निचली भूमि में जल-निकासी की समस्या

प्रारंभिक वृद्धि में अतिरिक्त जल पौधे के विकास पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है, जिससे उपज और रेशा की गुणवत्ता प्रभावित होती है। पटसन के खेत में जल-जमाव होने से पौधे की ऊँचाई, बेसल व्यास, पत्ती प्रतिधारण, प्रकाश संश्लेषण दर, पोषक तत्व अवशोषण, बायोमास सामग्री और लाभकारी सूक्ष्मजीवों की संख्या भी कम हो जाती है। जल-जमाव के लगभग 3-4 दिन बाद पटसन के पौधे में अपस्थानिक जड़ों का उद्भवन होता है, जो रेशा की गुणवत्ता को प्रभावित करता है। पटसन के पौधों की पत्तियां भी समय से पहले ही मुरझा जाती हैं और उनका रंग फीका पड़ जाता है। पटसन के पौधों का बेसल क्षेत्र गहरा और कठोर हो जाता है, जिससे जड़ों में रेशा की मात्रा कम हो जाती है। जल-जमाव के बाद कुछ ही हफ्तों में पौधा मुरझाने लगता है।

जल पदचिह्न में कमी

खेत से अतिरिक्त जल निकासी के लिए पटसन के खेतों को एक चौड़ी नाली / खाई (20-30 सें.मी. गहराई और 20 सें.मी. चौड़ा) जो कि ढलान की दिशा में हो, के माध्यम से जोड़ा जाना चाहिए। फसल के उचित बढ़वार और उपज के लिए पर्याप्त जल-निकासी सुविधा की व्यवस्था की जा सकती है। नुकसान को कम करने के लिए भारी वर्षा या चक्रवात के कारण पटसन के खेत से अतिरिक्त जल को एक दिन के भीतर ही हटा दिया जाना चाहिए।

सतही जल-जमाव और आंतरिक जल-निकासी के प्रावधान से रेशा की उपज में लगभग 2-3 गुना वृद्धि होती है। खेत से निकलने वाले अतिरिक्त जल को जल संचयन संरचना में

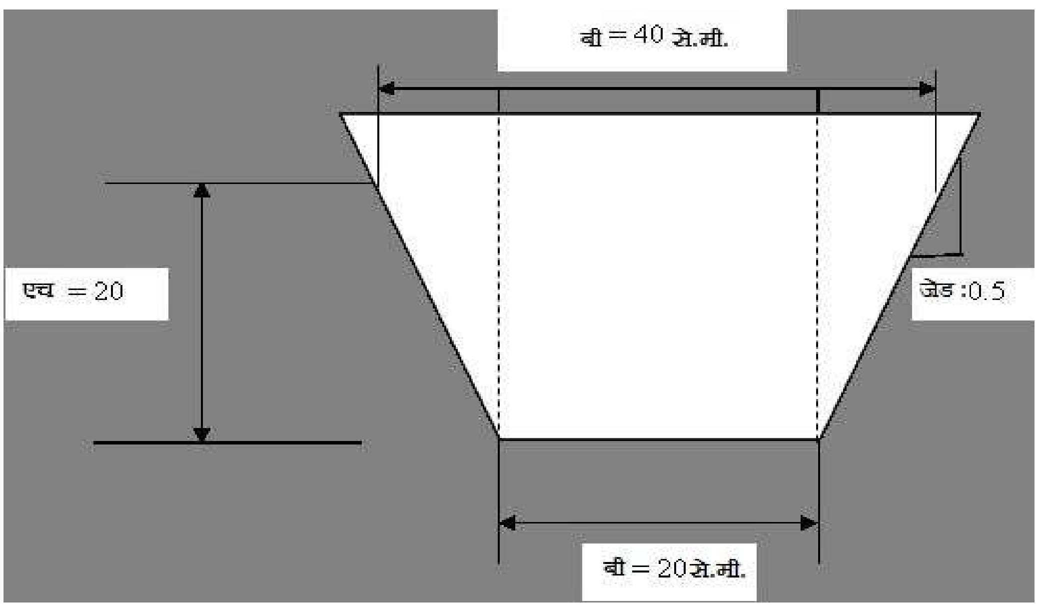

चित्र संख्या 03 : पर्याप्त जल-निकासी सुविधा

संग्रहित किया जा सकता है ताकि, बाद में फसल की जल तनाव अवधि, सड़न उद्देश्य और पटसन के बाद अन्य फसलों के लिए उपयोग में लाया जा सके।

खेत से निकलने वाले अतिरिक्त जल को संचयन करने की संरचना वाले खाई / चैनल का डिज़ाइन

❖ **300 मि.मी. वर्षा को ध्यान में रखते हुए वर्षा की मात्रा / एकड़ :** 300 घन मी. खेत से 60 - 70% अपवाहित जल (runoff water) को ध्यान में रखते हुए अपवाहित जल की मात्रा / एकड़ : 360 - 420 घन मी. खेत से रुके हुए जल को निकालने के लिए 10 मीटर के अंतराल पर ट्रैपेज़ॉइडल फ़ील्ड चैनल बनाए जाने चाहिए (फ़ील्ड चैनल की कुल संख्या = 4) क्षैतिज तली की चौड़ाई (बी/b) = 20 सें.मी. अधिकतम पानी की गहराई (एच/h) = 20 सें.मी. अतिप्रवाह के विरुद्ध मुक्त बोर्ड (एफ/f) = 10 सें.मी. चैनल की जल शीर्ष चौड़ाई (बी/B) = b + 2 zh = 40 सें.मी.

पटसन की खेत से जमे हुए जल को डगआउट तालाब (चैनल) तक ले जाने का खाका :

नौ मीटर (9 मी) लंबे, छह मीटर (6 मी) चौड़े और डेढ़ मीटर (1.5 मी) की गहराई वाले आयाम के तालाब का 50% अपवाहित जल की मात्रा को संग्रहित करने के लिए खोदे गए चैनल का खाका :

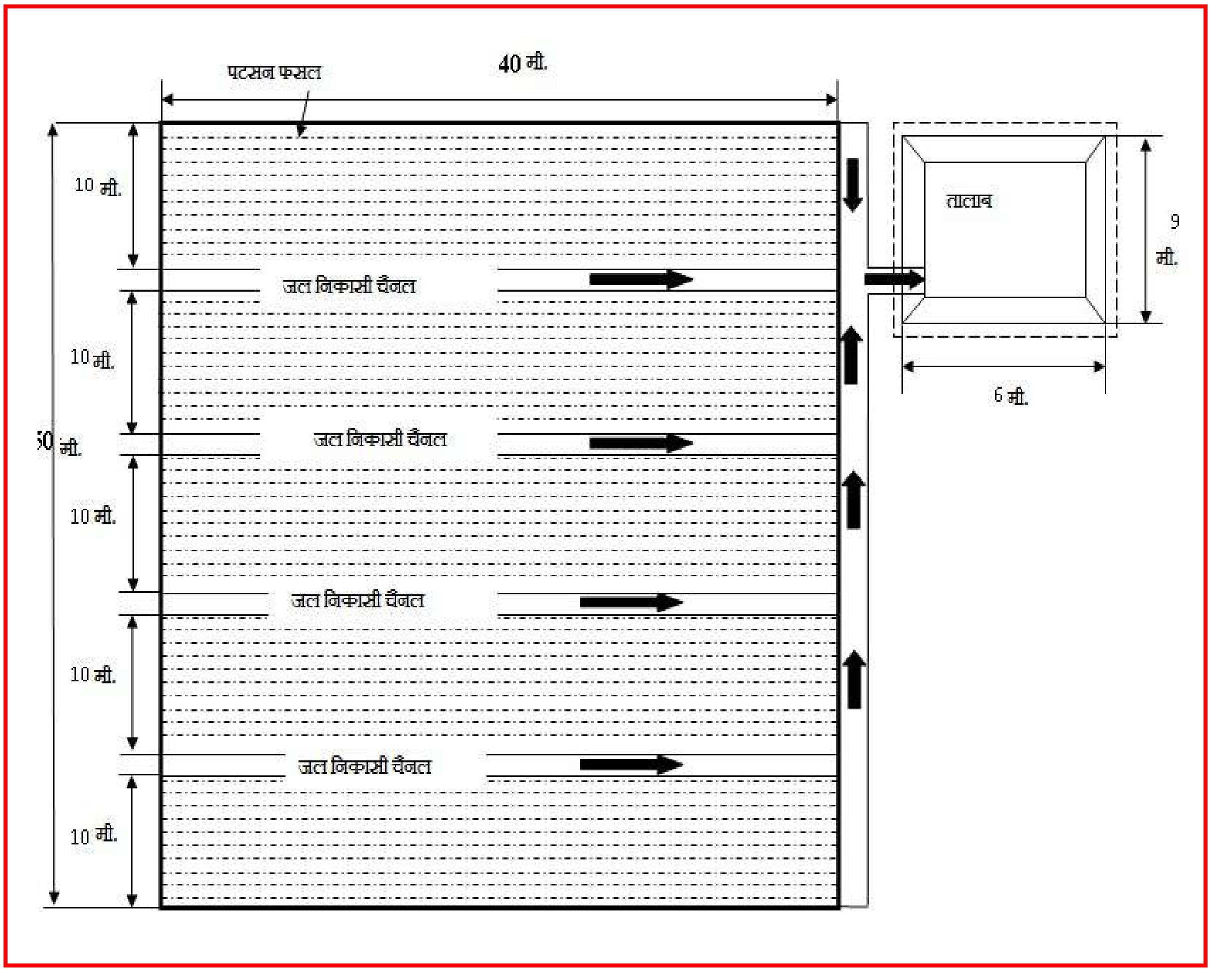

चित्र संख्या 04 : डग आउट तालाब (चैनल) का खाका

संस्थान में राजभाषा गतिविधियाँ : एक झलक

मनोज कुमार राय, विकास कुमार केशरी एवं कुमार निशांत चौरसिया
भाकृअनुप – केन्द्रीय पटसन एवं समवर्गीय रेशा अनुसंधान संस्थान, बैरकपुर, कोलकाता -700121

भाकृअनुप-केन्द्रीय पटसन एवं समवर्गीय रेशा अनुसंधान संस्थान एक प्रमुख राष्ट्रीय संस्थान है, जिसे पटसन एवं समवर्गीय रेशा उत्पादन में वृद्धि हेतु आवश्यक अनुसंधान तथा उसे किसानों तक पहुँचाने का दायित्व सौंपा गया है। इस संस्थान की स्थापना वर्तमान स्थान नीलगंज, बैरकपुर, कोलकाता में सन् 1953 के दौरान हुई जिसका कुल क्षेत्रफल 62.8 हे. है।

संस्थान के अनुसंधान कार्य को तीन प्रभागों नामतः फसल सुधार, फसल उत्पादन तथा फसल सुरक्षा एवं चार अनुभागों जैसे - जैव प्रौद्योगिकी, कृषि अभियांत्रिकी, फार्म मशीनरी एवं पावर तथा कृषि मौसम विज्ञान के अंतर्गत व्यवस्थित किया गया है। इन अनुसंधान प्रभागों एवं अनुभागों की सहायता हेतु फार्म, वर्कशाप, पुस्तकालय, संस्थान प्रौद्योगिकी प्रबन्धन एकक, कृषि अनुसंधान सूचना प्रणाली कक्ष, प्रशासन अनुभाग, वित्त व लेखा अनुभाग भी कार्यरत हैं। संस्थान में मौलिक, सामरिक तथा क्षेत्र अनुकूल अनुसंधान कार्य हेतु आवश्यक प्रयोगशालाएँ व क्षेत्रीय सुविधायें उपलब्ध हैं।

संस्थान ने पटसन एवं समवर्गीय रेशा तथा बीजों से संबंधित अनुसंधान कार्य हेतु देश के विभिन्न भागों में 4 अनुसंधान केन्द्रों की स्थापना की हैं, जो निम्नवत है :-

1. रेमी अनुसंधान केन्द्र, सरभोग, असम (वर्ष 1959 में स्थापित), कुल क्षेत्र 60 हे.।
2. सीसल अनुसंधान केन्द्र, बामरा, ओड़िशा (वर्ष 1962 में स्थापित), कुल क्षेत्र 106.4 हे.।
3. सनई अनुसंधान केन्द्र, प्रतापगढ़, उत्तर प्रदेश (वर्ष 1963 में स्थापित), कुल क्षेत्र 12.4 हे.।
4. केन्द्रीय पटसन एवं समवर्गीय रेशा बीज अनुसंधान केन्द्र, बुदबुद, वर्दवान, पश्चिम बंगाल (वर्ष 1956 में स्थापित), कुल क्षेत्र 86.1 हे.।

इन केन्द्रों के अलावा बहु-स्थानीय परीक्षण तथा तकनीकी प्रणालियों की पुनः स्थापना हेतु अखिल भारतीय पटसन एवं समवर्गीय रेशा नेटवर्क परियोजना के अंतर्गत विभिन्न राज्य कृषि विश्वविद्यालयों में 9 तथा भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के संस्थानों में 4 केन्द्र स्थापित हैं तथा इन केन्द्रों का नोडल एकक बैरकपुर मुख्यालय है।

राजभाषा गतिविधियाँ

भाकृअनुप-केन्द्रीय पटसन एवं समवर्गीय रेशा अनुसंधान संस्थान में भारत सरकार की राजभाषा नीति का अनुपालन सुनिश्चित करने के लिए संस्थान में एक राजभाषा प्रकोष्ठ है, इसमें एक वैज्ञानिक, प्रभारी, हिन्दी-कक्ष, एक सहा. प्रशा. अधिकारी तथा एक हिन्दी अनुवादक कार्यरत हैं।

इस संस्थान के वैज्ञानिकों द्वारा कृषकों के जीवन यापन में गुणात्मक सुधार हेतु पटसन एवं समवर्गीय रेशे वाली फसलों के महत्वपूर्ण कृषि तथ्यों से अवगत कराया जाता है। कृषि के क्षेत्र में इस संस्थान की साकारात्मक भूमिका रही है। विकासात्मक गतिविधियों एवं जानकारियों को अन्य भाषाओं के साथ-साथ हिन्दी में भी किसानों तक पहुंचाने में यह संस्थान प्रयासरत है। भाकृअनुप-केपसरेअसं एक वैज्ञानिक संस्थान होते हुए भी यहाँ राजभाषा हिन्दी को काफी बढ़ावा दिया जाता है। संस्थान के राजभाषा अनुभाग ने संस्थान में कार्यरत वैज्ञानिकों / अधिकारियों / कर्मचारियों के सहयोग द्वारा राजभाषा के प्रचार-प्रसार में अनेक उल्लेखनीय कार्य किए गए हैं।

भाकृअनुप-क्रिजैफ, बैरकपुर में हुई इन उपलब्धियों का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत हैं :-

प्रशासनिक उपलब्धियाँ

1. भारत सरकार की राजभाषा नीति के प्रावधानों, राजभाषा अधिनियम, 1963 और उक्तअधिनियम केतहत बनाए गए राजभाषा नियम, 1976 का कार्यान्वयन किया जाता है।
2. हिन्दी का कार्यसाधक ज्ञान रखने वाले अधिकारियों / कर्मचारियों के लिए जनवरी-जून माह के दौरान दो हिन्दी कार्यशालाओं का आयोजन किया गया है।
3. राजभाषा विभाग, गृह मंत्रालय द्वारा समय-समय पर जारी आदेशों का कार्यान्वयन किया जाता है।

4. राजभाषा विभाग द्वारा जारी वार्षिक कार्यक्रम का क्रियान्वयन किया जाता है।
5. संस्थान की राजभाषा कार्यान्वयन समिति से संबंधित सभी मामलों पर एजेंडा नोट्स तैयार कर तथा बैठकों का आयोजन व तत्पश्चात कार्यवृत्त तैयार कर उन पर अनुवर्ती कार्रवाई की जाती है।
6. संस्थान की राजभाषा कार्यान्वयन समिति की बैठकों में होने वाली चर्चायें सिर्फ और सिर्फ हिन्दी में की गयी हैं तथा उसे अमल में लाया जाताहै।
7. विहित फार्मों एवं सभी मानक मसौदे द्विभाषी रूप में तैयार किए गए हैं।
8. रजिस्टरों के शीर्षक द्विभाषी रूप में तैयार किए गए हैं।
9. संस्थान में सभी रबर की मोहरें, नाम पट्ट, शीर्षक-पत्र इत्यादि द्विभाषी में तैयार किए गए हैं।
10. संस्थान में धारा 3(3) के अन्तर्गत आने वाले संस्थान के सभी दर आमंत्रण, निविदा-प्रपत्र, निविदा सूचनाएं एवं बिक्री सूचनायें आदि द्विभाषी रूप में जारी किए जाते हैं।
11. संस्थान की विभिन्न बैठकों में होने वाली चर्चायें भी अधिकांशत: हिन्दी में ही की गयी हैं।
12. अन्य भाषा-भाषी लोगों के हिन्दी शब्द ज्ञान हेतु प्रतिदिन हिन्दी का एक शब्द 'आज का शब्द' लिखा जाता है।
13. हिन्दी अनुभाग में प्रविष्टियाँ, टिप्पणी एवं मसौदा लेखन व अन्य कार्य हिन्दी में ही किए गए हैं तथा अन्य अनुभागों में भी अधिकांश प्रविष्टियाँ, टिप्पणी एवं मसौदा लेखन हिन्दी में ही करने के निर्देश दिए गए हैं।
14. संस्थान के सभी कम्प्यूटरों में द्विभाषी रूप में काम करने के लिए यूनीकोड की सुविधा उपलब्ध कराई गयी है।
15. 'नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति' कोलकाता (कार्यालय-2), सीएसआईआर-केंद्रीय काँच एवं सिरामिक अनुसंधान संस्थान, 196 राजा एस.सी. मल्लिक रोड, कोलकाता - 700032 की छमाही बैठकों में संस्थान की ओर से संस्थान के निदेशक सहित अन्य अधिकारी भाग लिए हैं।
16. प्रशासनिक अनुभागों सहित अन्य प्रभागों में भी टिप्पणी तथा मसौदा लेखन आदि कार्य ई-ऑफिस के माध्यम से हिन्दी में किए जा रहे हैं।
17. हिन्दी में प्राप्त पत्रों के शत-प्रतिशत उत्तर हिन्दी में दिए जाते हैं।

राजभाषा कार्यान्वयन समिति की बैठकों का आयोजन

संस्थान में जनवरी-जून 2024 के दौरान राजभाषा कार्यान्वयन समिति की दो बैठकें क्रमशः दिनांक 22.03.2024 एवं 30.05.2024 को माननीय निदेशक, डॉ. गौरांग कर की अध्यक्षता में आयोजित की गई। इन बैठकों में संस्थान में हो रही विभिन्न गतिविधियों में हिन्दी के प्रगतिशील प्रयोग के तरीकों और साधनों पर चर्चायं की गई। इसके अलावा इन बैठकों में संस्थान के अधिकारियों / कर्मचारियों को राजभाषा विभाग द्वारा जारी वार्षिक कार्यक्रम (2024-25) के अनुसार "ग" क्षेत्र के लिए निर्धारित 55 प्रतिशत लक्ष्यों पर भी चर्चा की गई।

राजभाषा कार्यान्वयन समिति की तिमाही बैठक (जनवरी-मार्च 2024)

राजभाषा कार्यान्वयन समिति की तिमाही बैठक (अप्रैल-जून 2024)

हिन्दी कार्यशालाओं का आयोजन

त्रिमासिक हिन्दी कार्यशाला (जनवरी-मार्च 2024)

भाकृअनुप-केंद्रीय पटसन एवं समवर्गीय रेशा अनुसंधान संस्थान, बैरकपुर, कोलकाता में दिनांक 16 फरवरी, 2024 को संस्थान के अधिकारियों एवं कर्मचारियों के कार्यालयीन कार्यों में हिन्दी के प्रयोग को गति प्रदान करने के उद्देश्य से एक दिवसीय हिन्दी कार्यशाला का आयोजन किया गया । कार्यशाला में मुख्य वक्ता के रूप में डॉ. चंद्र गोपाल शर्मा, पूर्व-उप महाप्रबंधक (राजभाषा), पूर्व रेलवे, कोलकाता को आमंत्रित किया गया था। कार्यशाला की अध्यक्षता संस्थान के निदेशक, डॉ. गौरांग कर एवं संचालन डॉ. कुमार निशांत चौरसिया, वैज्ञानिक एवं प्रभारी, हिन्दी कक्ष द्वारा किया गया।

कार्यशाला में पधारे डॉ. चंद्र गोपाल शर्मा ने निदेशक महोदय का आभार व्यक्त करते हुए कार्यशाला में उपस्थित अधिकारियों तथा कर्मचारियों को धन्यवाद देते हुए कार्यशाला प्रारंभ किया। उन्होंने भारत संघ की राजभाषा के रूप में हिन्दी की वैधानिक यात्रा, भारत सरकार में विद्यमान बाध्यकारी द्विभाषिकता : अधिकारियों के दायित्व, संसदीय राजभाषा समिति, भारतीय लिपियों की वैज्ञानिकता एवं कम्प्यूटर कार्य तथा कार्यालय में हिन्दी कार्य के अंतर्गत प्रोत्साहन योजना के साथ राजभाषा विभाग, गृह मंत्रालय, भारत सरकार के वार्षिक लक्ष्यों तथा अन्य विषयों पर चर्चा करते हुए धारा 3(3) के अंतर्गत आने वाली सभी दस्तावेजों का द्विभाषी रूप में जारी करने संबंधित विषय पर जोर दिया। कार्यशाला में उपस्थित सभी प्रतिभागियों ने पूरे सत्र में उत्सुकता पूर्वक ज्ञानार्जन किया तथा अपनी शंकाओं का निराकरण किया।

कार्यशाला में उपस्थित संस्थान के सभी प्रभागाध्यक्षों, प्रभारियों, अधिकारियों तथा कर्मचारियों को डॉ. चंद्र गोपाल शर्मा, पूर्व-उप महाप्रबंधक (राजभाषा), पूर्व रेलवे, कोलकाता ने राजभाषा नीति के उत्कृष्ट कार्यान्वयन तथा राजभाषा के प्रगामी प्रयोग हेतु क्षेत्रीय राजभाषा पुरस्कार प्राप्त करने हेतु निदेशक महोदय, हिन्दी कक्ष एवं संस्थान के सभी कर्मचारी सदस्यों को हार्दिक बधाई एवं शुभकमनाएं दीं एवं भूरी-भूरी प्रशंसा की।

हिन्दी कार्यशाला के दौरान संस्थान के निदेशक, डॉ. गौरांग कर ने अपने अध्यक्षीय सम्बोधन में समस्त अधिकारियों एवं कर्मचारियों को हिन्दी के इतिहास की जानकारी का पुर्नस्मरण कराते हुए कार्यालयीन कार्यों में राजभाषा हिन्दी के अधिकाधिक प्रयोग पर ज़ोर दिया। निदेशक महोदय ने हिन्दी के सरल, सुबोध एवं आसान शब्दों के प्रयोग करने पर भी बल दिया। उन्होंने कार्यशाला में उपस्थित सभी अधिकारियों एवं कर्मचारियों से अपील किया कि वे अपने-अपने दैनिक कार्यालयीन कार्यों में राजभाषा हिन्दी का प्रयोग सुनिश्चित करें।

उक्त कार्यशाला में कुल 46 कार्मिकों (26 अधिकारी एवं 20 कर्मचारी) ने भाग लिया। कार्यशाला का समापन डॉ. सुरेन्द्र कुमार पाण्डेय, प्रधान वैज्ञानिक के धन्यवाद ज्ञापन के साथ सम्पन्न हुआ।

जनवरी-मार्च 2024 के दौरान आयोजित हिन्दी कार्यशाला में पधारे डॉ. चंद्र गोपाल शर्मा सहित संस्थान के निदेशक डॉ. गौरांग कर।

जनवरी-मार्च 2024 के दौरान आयोजित हिन्दी कार्यशाला में प्रशिक्षण प्राप्त करते संस्थान के अधिकारी एवं कर्मचारी गण।

त्रिमासिक हिन्दी कार्यशाला (अप्रैल-जून 2024)

दिनांक 26 जून, 2024 को संस्थान के अधिकारियों / कर्मचारियों के कार्यालयीन कार्यों में हिन्दी कार्य को गति प्रदान करने के उद्देश्य से एक दिवसीय हिन्दी कार्यशाला का आयोजन डॉ. बी.सी. कुण्डू सभागार में किया गया। संस्थान के निदेशक डॉ गौरांग कर की अध्यक्षता में हिन्दी कार्यशाला का सफल संचालन डॉ. सुरेन्द्र कुमार पाण्डेय, प्रधान वैज्ञानिक तथा डॉ. सुनीति कुमार झा, प्रधान वैज्ञानिक के साझा सहयोग द्वारा किया गया।

डॉ. सुरेन्द्र कुमार पाण्डेय, प्रधान वैज्ञानिक ने संस्थान के अधिकारियों तथा कर्मचारियों का हार्दिक अभिनंदन एवं स्वागत करते हुए कार्यशाला का शुभारंभ किया। कार्यशाला की अध्यक्षता संस्थान के निदेशक, डॉ. गौरांग कर द्वारा किया गया। उन्होंने अपने सम्बोधन में हिन्दी भाषा के महत्व पर प्रकाश डालते हुए कहा कि देश को एकत्र करने हेतु हिन्दी की भूमिका स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरांत सदैव अग्रणीय रही, जिसका मुख्य कारण देश की अखण्डता को निरंतर कायम रखना था। जैसा कि हम जानते है कि हिन्दी का प्रयोग हमारा संवैधानिक दायित्व भी है। अतः इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु हिन्दी का महत्व सर्वोपरि है। उन्होंने अपने सम्बोधन में संस्थान के अधिकारियों एवं कर्मचारियों को यथासम्भव अपना कार्यालयीन कार्य राजभाषा हिन्दी में करने हेतु प्रेरित किया। उन्होंने इस बात पर भी जोर दिया कि हमें कार्यालयीन कार्यों में हिन्दी के सरल, सुबोध एवं आसान शब्दों का प्रयोग करते हुए अधिकांश कार्य को हिन्दी में करने हेतु निरंतर प्रयासरत रहना चाहिए एवं किसी भी प्रकार की असुविधा का बोध हो तो संस्थान में कार्यान्वित हिन्दी कक्ष से सहयोग प्राप्त करना चाहिए ताकि हिन्दी का कार्य अनवरत चलता रहे। इस प्रकार कार्यशाला में उपस्थित सभी प्रतिभागियों ने हिन्दी के आसान शब्द के चयन तथा उसकी वर्तनी से संबंधित ज्ञान का अर्जन किया तथा अपनी समस्याओं का समाधान भी प्राप्त किए। इस कार्यशाला के तकनीकी सत्र में राजभाषा कार्यान्वयन समिति के सदस्यों नामतः डॉ सुरेन्द्र कुमार पाण्डेय एवं डॉ. सुनीति कुमार झा के द्वारा हिन्दी टिप्पण एवं मसौदा लेखन, ई-ऑफिस में हिन्दी में कार्य करने की पद्धती इत्यादि विषयों पर प्रशिक्षण प्रदान किया गया। कार्यशाला में कुल 75 कार्मिकों (45 अधिकारी एवं 30 कर्मचारी) तथा संस्थान में अध्ययन कर रहे लगभग 27 छात्र छात्राओं ने भाग लेकर ज्ञानार्जन किया।

कार्यशाला का समापन डॉ. सुनीति कुमार झा, प्रधान वैज्ञानिक के धन्यवाद ज्ञापन के साथ सम्पन्न हुआ।

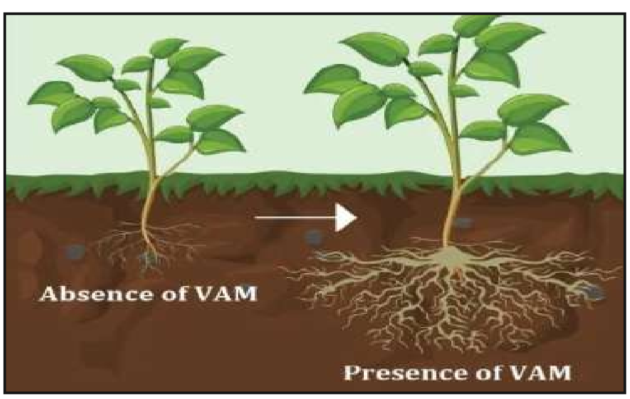
Absence of VAM
Presence of VAM

रेशा किरण

भाकृअनुप-केन्द्रीय पटसन एवं समवर्गीय रेशा अनुसंधान संस्थान

(आईएसओ 9001 : 2015 प्रमाणित संस्थान)

बैरकपुर , कोलकाता - 700121, पश्चिम बंगाल

फ़ोन: 033-2535-6121/6122/6124 फैक्स: 033-25350415

मेल: director.crijaf@icar.gov.in

https://crijaf.icar.gov.in